विषय-सूची

प्रस्तावना

बारह पंक्ति

आग बरसती हो पर जिसको,
आगे बढ़ने की लय थी।
शस्त्र-हीन घिर जाने पर भी
जिसकी जय आशा-मय थी ॥

*

रोम-रोम जिसका वैरी था,
जो सहता था दुख पर दुख।
काँटों के सिंहासन पर भी
शत सविता सा जिसका मुख ॥

*

भाई ने भी छोड़ दिया—
पर रखा देश का पानी है।
पाठक ! पढ़ लो उसी वीर की
हमने लिखी कहानी है ॥

साहित्यिक-मूर्धन्य पंडित श्रीनारायण चतुर्वेदी, एम० ए० (लंदन)

प्रताप

अड़तालीस पंक्ति

यज्ञ-अनल सा धधक रहा था
वह स्वतन्त्र अधिकारी।
रोम-रोम से निकल रही थी
चमक-चमक चिनगारी॥

अपना सब कुछ लुटा दिया
जननी-पद - नेह लगाकर।
कलित-कीर्ति फैला दी है
निद्रित मेवाड़ जगाकर॥

भरा हुआ था उर प्रताप का
गौरव की चाहों से।
फूँक दिया अपना शरीर
हम दुखियों की आहों से॥

जग - वैभव - उत्सर्ग किया
भारत का वीर कहाकर।
माता-मुख-लाली प्रताप ने
रख ली लहू बहाकर॥

भीषण-प्रण तक किया, रक्त से
समर-सिंधु भर डाला।
ले नंगी तलवार बढ़ा
सब कुछ स्वाहा कर डाला॥

आदरणीय
पण्डित श्रीनारायण
चतुर्वेदी
'श्रीवर'
को

चित्तौड़

छप्पन पंक्ति

नहीं देखते सतियों के जलने—
का है अंगार कहाँ ?
राजपूत ! तेरे हाथों में
है नंगी तलवार कहाँ ?

कहाँ पद्मिनी का पराग है,
सिर से उसे लगा लें हम।
रत्नसिंह का क्रोध कहाँ है
गात-रक्त गरमा लें हम॥

जौहर-व्रत करने वाली
करुणा की करुण पुकार कहाँ ?
और न कुछ कर सकते तो
देखें उसकी तलवार कहाँ॥

मन्द पड़े जिससे वैरी
वह भीषण हाहाकार कहाँ !
स्वतन्त्रता के संन्यासी ?
राणा का रण-उद्गार कहाँ॥

किस न वीर की दमक उठी थी
दीप्ति दीपिका-माला सी।
कौन वीर बाला न चिता पर
चमक उठी थी ज्वाला-सी॥

चित्र-सूची

ऐ मेरे चित्तौड़ देश, बिखरे
प्रश्नों को कर दे हल;
साहस भर दे हृदय-हृदय में,
बाहु-बाहु में भर दे बल ॥

वीर-रक्त से तू पवित्र है,
तू मेरे बल का साधन।
बोल-बोल तू एक बार फिर
कब देगा राणा सा धन ॥

कहते थे भाला आने दो
चिल्ले पर तीर चढ़ाने दो।
आगे को पैर बढ़ाने दो
रण में घोड़ा दौड़ाने दो॥

देखो फिर कुन्तल वालों की,
कुछ करामात करवालों की।
इस वीर-प्रसवनी अवनी के
छोटे से छोटे बालों की॥

बसने तक को है ग्राम नहीं,
जंगल में रहते धाम नहीं।
पर भीषण यही प्रतिज्ञा है,
अरि कर सकते आराम नहीं॥

हम माता के गुण गायेंगे,
बलि जन्म-भूमि पर जायेंगे।
अपना झण्डा फहरायेंगे,
हम हाहाकार मचायेंगे॥

बैरी-सम्मुख अड़ जायेंगे,
रण में न तनिक घबड़ायेंगे।
लड़ जायेंगे, लड़ जायेंगे,
दुश्मन को ले उड़ जायेंगे॥

यह कहते थे, चढ़ जाते थे,
रण करने को घबड़ाते थे।
मारू बाजे कढ़ जाते थे,
हथियार लिये बढ़ जाते थे॥

मुगलों का नाम मिटायेंगे,
अपना साहस दिखलायेंगे।
लड़ते लड़ते मर जायेंगे,
मेवाड़ न जब तक पायेंगे॥

श्रीश्यामनारायण पाण्डेय

वरडोली है यही, यहीं पर
है समाधि सेनापति की।
महातीर्थ की यही वेदिका,
यही अमर-रेखा स्मृति की॥

एक बार आलोकित कर हा,
यहीं हुआ था सूर्य अस्त।
चला यहीं से तिमिर हो गया
अन्धकार-मय जग समस्त॥

आज यहीं इस सिद्ध पीठ पर
फूल चढ़ाने आया हूँ।
आज यहीं पावन समाधि पर
दीप जलाने आया हूँ॥

आज इसी छतरी के भीतर
सुख-दुख गाने आया हूँ।
सेनानी को चिरसमाधि से
आज जगाने आया हूँ॥

सुनता हूँ वह जगा हुआ था
जौहर के बलिदानों से।
सुनता हूँ वह जगा हुआ था
बहिनों के अपमानों से॥

समाधि के समीप से

कवि

रामनवमी }
१९९६

कहा डपटकर—"बोल प्राण लूँ,
या छोड़ेगा यह व्यभिचार ?"
बोला अकबर—"क्षमा करो अब
देवि ! न होगा अत्याचार ॥"

जब प्रताप सुनता था ऐसी
सदाचार की करुण-पुकार ।
रण करने के लिए म्यान से
सदा निकल पड़ती तलवार ॥

वक्ष भरा रहता अकबर का
सुरभित जय-माला से।
सारा भारत भभक रहा था
क्रोधानल-ज्वाला से।

रत्न-जटित मणि-सिंहासन था
मण्डित रणधीरों से।
उसका पद जगमगा रहा था
राजमुकुट-हीरों से॥

जग के वैभव खेल रहे थे
मुगल-राज-थाती पर।
फहर रहा था अकबर का
झण्डा नभ की छाती पर॥

यह प्रताप यह विभव मिला,
पर एक मिला था वादी।
रह रह काँटों सी चुभती थी
राणा की आज़ादी॥

कहा एक वासर अकबर ने—
"मान, उठा लो भाला,
शोलापुर को जीत पिन्हा दो,
मुझे विजय की माला॥

प्रताप ! आज सात वर्षों से तेरी पवित्र कहानी गा-गाकर सुना रहा था, मोह होने पर भी आज उसे पूर्ण कर रहा हूँ। मुझे इसमें क्या सफलता मिली, मैंने साहित्य-देश-धर्म की क्या सेवा की, मैं नहीं कह सकता। यह तो तू ही बता सकता है कि मेरी 'हल्दीघाटी' और तेरी 'हल्दीघाटी' में क्या अन्तर है।

वीरशिरोमणि ! तेरी अक्षुण्ण, वीरता, धर्मनिष्ठा, कर्तव्य-परायणता और देश-सेवा ही नहीं, बल्कि चंचलगति चेतक घोड़ा का हवा से बातें करना, चंडिका की जीभ की तरह लपलपाती हुई रुधिर-प्रस्रविणी तलवार का बिजली की तरह गिरना, रक्त-तृषित तीव्र भाले का ताण्डव, झाला-मान्ना और मानसिंह प्रभृति सरदारों का आत्मविसर्जन, वीर सिपाहियों का आज़ादी के लिए खेलते-खेलते हल्दी-घाटी के महायज्ञ में आहुति बनकर स्वाहा हो जाना, भूख और प्यास के मारे तड़पते हुए तेरे बच्चों का करुण क्रन्दन और तेरा प्राणों के दीपक के उजियाले में वन-वन पलायिता स्वतन्त्रता की टोह लगाना आज भी आँखों के सामने सिनेमाफ़िल्म की तरह खिंचा हुआ है।

मेरे सेनापति ! क्या तू नहीं जानता था कि मुग़ल-सम्राट् अकबर तुझको निगल जाना चाहता है ? क्या तुझको नहीं मालूम था कि अपने गौरव और अभिमान को लात मारकर कितने राजपूत महीप मुग़लों की चरण-सेवा कर रहे हैं ? तू ख़ूब जानता था कि अम्बराधिपति ने सोने-

"करो न बकझक लड़कर ही
अब साहस दिखलाना तुम।
भगो, भगो अपने फूफे को भी
लेते आना तुम ॥

महा महा अपमान देखकर
बढ़ी क्रोध की ज्वाला।
मान कड़ककर बोल उठा फिर
पहन अर्चि की माला

मानसिंह की आज अवज्ञा
कर लो और करा लो।
बिना विजय के ऐ प्रताप
तुम विजय-केतु फहरा लो ॥

पर इसका मैं बदला लूँगा,
अभी चन्द दिवसों में।
झुक जाओगे भर दूँगा जब
जलती ज्वाल नसों में ॥

ऐ प्रताप. तुम सजग रहो
अब मेरी ललकारों से।
अकबर के विकराल क्रोध से,
तीखी तलवारों से ॥

ऐ प्रताप तैयार रहो मिटने
के लिए रणों में।
हाथों में हथकड़ी पहनकर
बेड़ी निज चरणों में ॥

मानसिंह-दल बन जायेगा
जब भीषण-रण पागल।
ऐ प्रताप, तुम झुक जाओगे
झुक जायेगा सेना-बल ॥

चाँदी के टुकड़ों पर मर्यादा बेचकर अपनी कन्या की शादी अकबर के साथ कर दी है। तुझे अच्छी तरह मालूम था कि बीकानेर के नरेश अकबर की छत्रच्छाया में विश्राम कर रहे हैं। बूँदी ने अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली है, अजमेर ने अपने को अकबर के हाथों में सौंप दिया है। माँ के पैरों में पराधीनता की बेड़ी पड़ी हुई है। यही नहीं, तू यह भी जानता था कि विद्वेष की आग मेरे घर में ही लगी हुई है। लिखते कलम काँपने लगती है, हृदय विदीर्ण होने लगता है। तुझे अच्छी तरह मालूम था कि एक ही माता के, एक ही गर्भ से जनित, सहोदर शक्तिसिंह मुग़लों की आराधना से दूर नहीं है, भाई सागरसिंह अकबर के दरवाज़े पर रोटी के एक टुकड़े के लिए कुत्ते की तरह दुम हिला रहा है।

वीर सैनिक! लेकिन तुझे इसकी दहशत नहीं थी, स्वाधीनता के सामने टिड्डी-दल का भय नहीं था, तुझे तो आगे बढ़ने का अभ्यास था। तूने किसी भी युद्ध में एड़ी की जगह अँगूठा नहीं दिया। गरजती हुई तोपों के विकराल मुखों से धाँय-धाँय गोले बरसते हों, छप-छप करती हुई तलवारें क्रुद्ध नागिनों की तरह फुफ़कार रही हों, भाले-बर्छों के भयावह प्रकाश में चकाचौंध लग रही हों, प्रतिद्वन्द्वी की सेना विजय की आशा से कराहती लाशों के सीनों को रौंदती हुई बढ़ती चली आ रही हो, रणक्षेत्र में हाहाकार मचा हो किन्तु तेरे चेतक को रोकने की शक्ति पैदा ही नहीं हुई थी। वह तो तब तक अविराम-गति से बढ़ता था जब तक फलाफल का निर्णय न हो जाय।

वीर-पुंगव! धन-लोलुप विलास-प्रिय स्वार्थी संसार को देखकर कदाचित् तुझे अपनी सेना पर भी पूरा विश्वास नहीं था; यदि विश्वास था तो केवल एकलिंग महादेव की कृपाकोर का, स्वामि-भक्त चेतक का, रक्त पी-पीकर वमन कर देनेवाली तीखी तलवार का, आत्मबल का, अपने शोणित-अभिषिक्त सिंहासन का और शिशोदिया वंश के पूर्वजों के आशीर्वाद का।

हल्दीघाटी के प्रांगण में
हम लहू-लहू लहरा देंगे।
हम कोल-भील, हम कोल-भील
हम रक्त-ध्वजा फहरा देंगे॥

यह कहते ही उन भीलों के
सिर पर भैरव-रणभूत चढ़ा।
उनके उर का संगर-साहस
दूना-तिगुना-चौगुना बढ़ा॥

इतने में उनके कानों में
भीषण आँधी सी हहराई।
मच गया अचल पर कोलाहल
सेना आई, सेना आई॥

कितने पैदल कितने सवार
कितने स्यन्दन जोड़े जोड़े।
कितनी सेना, कितने नायक
कितने हाथी, कितने घोड़े॥

कितने हथियार लिये सैनिक
कितने सेनानी तोप लिये।
आते कितने झण्डे ले, ले
कितने राणा पर कोप किये॥

कितने कर में करवाल लिये
कितने जन मुग्दर ढाल लिये।
कितने कण्टक-मय जाल लिये,
कितने लोहे के फाल लिये॥

कितने खंजर-भाले ले, ले,
कितने बरछे ताजे ले, ले,
पावस-नद से उमड़े आते,
कितने मारू बाजे ले-ले॥

मेवाड़-सिंह ! तू कहा करता था कि मेरे और राणा साँगा के बीच यदि कायर उदयसिंह का जन्म नहीं होता तो मेवाड़ को ये बुरे दिन न देखने पड़ते। बात सच थी। मेवाड़ के पवित्र सिंहासन को अपनी कायरता और भीरुता से यदि उदयसिंह कलंकित नहीं करता तो आज इतिहास के पृष्ठों पर कुछ और ही बात होती। उदयसिंह ने राजपूत वंश के लिए निन्द्य और दब्बू स्वभाव का ही परिचय नहीं दिया, बल्कि वह जगमल को अपना उत्तराधिकारी बनाकर एक बहुत बड़ा अनर्थ भी कर गया, किन्तु सरदार लोग राष्ट्र का यह तिरस्कार अधिक दिन तक नहीं सहन कर सके, जगमल की कापुरुषता और विलास-प्रियता मेवाड़ के, उज्ज्वल मुख पर कालिख नहीं लगा सकी। एक दिन सरदारों ने अचानक उसके सिर से मुकुट और तलावार छीन कर जयनाद और करतल-ध्वनि के बीच तुझे राजमुकुट पिन्हाया और हाथ में तलवार देकर मेवाड़-गौरव की रक्षा के लिए प्रार्थना की। इच्छा न रहने पर भी अभिरक्षण का भार तुझे स्वीकार करना पड़ा। सरदारों के मुखमण्डल पर प्रसन्नता प्रस्फुटित हो गई और मेवाड़ का सिंहासन गर्व से फूल उठा।

पतझड़ के बाद वसन्त आया। निद्रित देश नवीन उत्साहों के साथ जाग गया, तलवारें म्यानों के भीतर ही तड़प उठीं, केंचुल छोड़कर फुफकारते हुए नागों के समान मुरचे रहित भाले और बरछे चमक उठे, हथियारों ने झन-झन के भयंकर स्वर में वैरी को रण-निमन्त्रण दिया और गिरिराज अरावली का एक-एक कण जय-निर्घोष कर उठा। वह थी तेरे राज्याभिषेक की पुण्य-तिथि।

राष्ट्रपति ! तूने राज-लक्ष्मी नहीं प्राप्त की, बल्कि तुझे अपनी वीरता परखने के लिए एक कसौटी मिल गई। तूने उसी दिन राजपूत सरदारों के सामने प्रतिज्ञा की कि जब तक मेरी रगों में रक्त प्रवाहित होता रहेगा, धर्म को तिलांजलि नहीं दे सकता, वैभव के लोभ से शिशोदिया-कुल को कलंकित नहीं कर सकता, क्षणिक सुख की लालसा से

भैरव-धनु की टंकार करो
तुम शेत सदृश फुङ्कार करो।
अपनी रक्षा के लिए उठो
अब एक बार हुङ्कार करो॥

भीलों के कल-कल करने से
आया अरि-सेनाधीश सुना।
बढ़ गया अचानक पहले से
राणा का साहस बीस गुना॥

बोला नरसिंहो, उठ जाओ
इस रण-वेला रमणीया में।
चाहे जिस हालत में जो हो
जाग्रति में, स्वप्न-तुरीया में॥

जिस दिन के लिए जन्म भर से
देते आते रण-शिक्षा हम।
वह समय आ गया करते थे
जिसकी दिन-रात प्रतीक्षा हम॥

अब, सावधान, अब सावधान।
वीरो, हो जाओ सावधान।
बदला लेने आ गया मान
कर दो उससे रण घमासान॥

सुनकर सैनिक तनतना उठे
हाथी-हय-दल पनपना उठे।
हथियारों से भिड़ जाने को
हथियार सभी झनझना उठे॥

गनगना उठे सातंक लोक
तलवार म्यान से कढ़ते ही।
शूरों के रोएँ फड़क उठे
रण-मन्त्र वीर के पढ़ते ही॥

माँ के पवित्र दूध का तिरस्कार मुझसे नहीं होगा, भगवान् एकलिंग को छोड़कर संसार के किसी भी सम्राट् के सामने मेवाड़ अपना मस्तक नहीं झुका सकता। चाहे जो हो, कोई साथ दे या न दे, मुझे इसकी चिन्ता नहीं। मैं युद्ध करूँगा—प्राण रहते शिशोदिया-वंश के हाथ से स्वाधीनता न जाने दूँगा; पराधीनता की बेड़ी में रहना मुझे स्वीकार नहीं है।

वीरवर! तेरी प्रतिज्ञा सुनकर म्यानों से एक साथ सहस्रों तलवारें निकल पड़ीं, सरदारों ने आगे बढ़कर कहा "पराधीनता की बेड़ी में रहना स्वीकार नहीं है।" जनता ने हर्षध्वनि के साथ जय-निनाद किया, राज्याभिषेक का उत्सव समाप्त हो गया। वह भीष्म-प्रतिज्ञा अनेक जंगलों, पहाड़ों और नदियों को पार करती हुई अकबर के कानों में गाज की तरह गिरी। दिल्ली का सिंहासन भय से काँप उठा।

महाराणा! तेरा प्रबल और सहृदय-प्रतिद्वन्द्वी अकबर बड़ा ही प्रतिभा सम्पन्न और कूटनीतिज्ञ था। उसने छोटे-बड़े अनेक राजाओं को मिलाकर अपने साम्राज्य को सुदृढ़ और सुव्यवस्थित बना रक्खा था। उसके उदय होते ही सभी नक्षत्र अस्त हो गये थे, केवल एक ही नक्षत्र तू शत-शत प्रकाश से चमक रहा था। वह चाहता था अपने तेज से तेरी दिव्य-ज्योति बुझा देना। वह चाहता था, अपने वैभव और प्रताप से तेरा उन्नत मस्तक झुका देना, वह चाहता था अपनी असंख्य वाहिनी द्वारा मेवाड़ को ध्वंस करना और तुझे अपनी आँखों से पराजित देखना; लेकिन क्या उसका यह स्वप्न नहीं था? यदि उसे अपने विशाल साम्राज्य का अभिमान था तो तुझे भगवान् एक-लिङ्ग का गर्व था, यदि वह सेना-मद से मतवाला था तो तू देश-सेवा के लिए पागल था, यदि उसमें तुझ पर विजय प्राप्त करने की शक्ति थी तो तुझमें अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा करने की लगन थी, यदि वह राष्ट्र-निर्माता बनने के लिए उद्योग-शील हो रहा था तो तू बाप्पा रावल के गौरव की रक्षा के

नाना तरु-वेलि-लता-मय
पर्वत पर निर्जन वन था।
निशि बसती थी झुरमुट में
वह इतना घोर सघन था॥

पत्तों से छन-छनकर थी
आती दिनकर की लेखा।
वह भूतल पर बनती थी
पतली-सी स्वर्णिम रेखा॥

लोनी-लोनी लतिका पर
अविराम कुसुम खिलते थे।
बहता था मारुत, तरु-दल
धीरे-धीरे हिलते थे॥

नीलम-पल्लव की छवि से
थी ललित मंजरी-काया।
सोती थी तृण-शय्या पर
कोमल रसाल की छाया॥

मधु पिला-पिला तरु-तरु को
थीं बना रही मतवाला।
मधु-स्नेह-वलित बाला सी
थी नव मधूक की माला॥

लिए चिन्तित हो रहा था। जो हो, किन्तु तू उसे खटकता था और तेरी स्वतन्त्रता उसे अखर रही थी। वह मौक़ा ढूँढ रहा था तुझ पर चढ़ आने का और प्रतीक्षा कर रहा था मेवाड़ के क़िले पर अपनी वैजय-विजयन्ती फहराने की। उसे अधिक दिन तक राह नहीं देखनी पड़ी, समय ने उसे अवसर प्रदान कर ही दिया।

धर्मवीर! उदयसागर के तट पर धर्म-पतित मानसिंह का तूने इसलिए तिरस्कार किया कि वह अपने साथ तुझको भी भोजन कराकर धर्म-च्युत बनाना चाहता था और अपने व्यक्तित्व से तुझे प्रभावित करना चाहता था। उदयसागर का भग्नावशेष अब भी उसके नाम पर थूक रहा है, क्योंकि वह अपने ही भाइयों के रक्त से सींचकर मुग़ल-साम्राज्य का शरीर पुष्ट कर रहा था। उसे अपने ही देश के शोषण में आनन्द मिल रहा था, वह राजपूत-कुल-गौरव को पद-दलित करके अपनी ही जड़ खोद रहा था और अपने उदार धर्म को उपाधियों के हाथ बेच रहा था।

अपने दक्षिण बाहु मानसिंह की अवज्ञा से अकबर बौखला उठा, उसने तुरत मानसिंह को एक विशाल सेना देकर मेवाड़ को श्मशान बनाने के लिए भेजा। दलबल सहित मानसिंह ने खमनौर से थोड़ी दूर पर रक्ततलैया के निकट शाही बाग़ में अपना पड़ाव डाल दिया जहाँ पहाड़ों के झरने अपने कलकल-स्वर में उसके इस नीच कर्म के लिए धिक्कार रहे थे।

सूरमा! भला तू कब अवसर चूकनेवाला था? पहले ही से हल्दीघाटी के समीप एक मनोहर उपत्यका में बाईस हज़ार सिपाहियों को लेकर शत्रु की बाट देख रहा था और अरावली की उन्नत चोटी पर गर्वपूर्ण केसरिया झंडा फहरा रहा था। तेरी सेना में हिन्दू मुसलमान दोनों सम्मिलित थे, समर-यज्ञ में दोनों अपने प्राणों की आहुतियाँ देकर जननी जन्मभूमि की रक्षा करना चाहते थे। इसी से कहा जाता है कि हल्दीघाटी का युद्ध साम्प्रदायिक युद्ध नहीं था; बल्कि अपने-अपने सिद्धान्तों की लड़ाई थी।

वैरी को मिट जाने में
अब थी क्षण भर की देरी।
तब तक बज उठी अचानक
राणा प्रताप की भेरी॥

वह अपनी लघु-सेना ले
मस्ती से घूम रहा था।
रण-भेरी बजा-बजाकर
दीवाना झूम रहा था॥

लेकर केसरिया झण्डा
वह वीर-गान था गाता
पीछे सेना दुहराती
सारा वन था हहराता॥

गाकर जब आँखें फेरीं
देखा अरि को बन्धन में।
विस्मय-चिन्ता की ज्वाला
भभकी राणा के मन में॥

लज्जा का बोझा सिर पर।
नत मस्तक अभिमानी था।
राणा को देख अचानक
वैरी पानी-पानी था॥

दौड़ा अपने हाथों से
जाकर अरि-बन्धन खोला।
वह वीर-व्रती नर-नाहर
विस्मित भीलों से बोला॥

"मेवाड़ देश के भीलो
यह मानव-धर्म नहीं है।
जननी-सपूत रण-कोविद
योधा का कर्म नहीं है॥

कर्मवीर ! जहाँ तेरे वीरों की सशस्त्र टोली ठहरी थी उसके चारों ओर दुर्भेद्य पहाड़ों की शृङ्खलाएँ प्राचीर की तरह खड़ी हैं। उनके उत्तुङ्ग शिखरों पर पुंजा के नेतृत्व में कोल-भील धनुष-बाण लेकर पैंतरे बदल रहे थे। उन्हीं गगन-भेदी पहाड़ों के बीच से पतली लकीर की तरह एक राह निकलती है जो तीर्थ के समान, पवित्र हल्दीघाटी के नाम से प्रसिद्ध है, वह गिरिपथ इतना भयावह है कि उसके विषय में एक किंवदन्ती अभी तक चली आती है कि मरे हुए सैनिक प्रेत होकर रात्रि की नीरवता में अब भी युद्ध करते हैं और उनके मुँह से 'मारो-काटो' के भयद शब्द पहाड़ों में चक्कर खाते, टकराते और गूँजते हुए आकाश में विलीन हो जाते हैं।

महापुरुष ! तेरा हृदय कहीं हीरा की कनी और पहाड़ की चट्टान की तरह कठोर था और कहीं शिरीष-कुसुम और गुलाब के फूल के समान कोमल। जब दोनों सेनाएँ अपने-अपने पड़ाव पर एक दूसरे के आक्रमण की प्रतीक्षा कर रही थीं, एक दिन मानसिंह पहाड़ों और जंगलों के मनोहर दृश्य देखकर टहलने के लिए लालायित हो उठा। घूमने चला। आषाढ़ का लवंदर पड़ा हुआ था, पृथ्वी का तप्त हृदय शीतल हो गया था, वह धीरे-धीरे साँस ले रही थी, दिशाएँ सुरभित हो रही थीं, ठंडी हवा मन्द-मन्द बह रही थी और मानसिंह एक नाले के किनारे से पर्वतीय जंगलों की ओर बढ़ रहा था। वह वृक्षों के पल्लवों पर अंकित तेरी अमर कीर्ति और अपनी अपकीर्ति पढ़ रहा था, नदियों, नालों और झरनों की कलकल ध्वनि में तेरा गौरव-गान और अपने तिरस्कार के तराने सुन रहा था, विविध पक्षियों की रागिनियों में तेरे गुणों की गाथा और अपने अवगुणों की कहानी सुन-सुनकर ऊब रहा था और दूर समागत हिंस्र जन्तुओं के गर्जन में तेरी दहाड़ और अपना चीत्कार सुनकर व्याकुल हो रहा था। वह लौटना ही चाहता था कि भीलों की अनेक आँखें उसके ऊपर पड़ीं। उसने भी भयभीत आँखों से भीलों को देखा। शरीर में बिजली दौड़ गई। एक दृष्टि

यह कड़-कड़-कड़-कड़ कड़क उठी,
यह भीम-नाद से तड़क उठी।
भीषण-संगर की आग प्रबल
वैरी-सेना में भड़क उठी॥

डग-डग-डग-डग रण के डंके
मारू के साथ भयद बाजे।
टप-टप-टप घोड़े कूद पड़े,
कट-कट मतंग के रद बाजे॥

कलकल कर उठी मुगल सेना
किलकार उठी, ललकार उठी।
असि म्यान-विवर से निकल तुरत
अहि-नागिन-सी फुफकार उठी॥

शर-दण्ड चले, कोदण्ड चले,
कर की कटारियाँ तरज उठीं।
खूनी बरछे-भाले चमके,
पर्वत पर तोपें गरज उठीं॥

फर-फर-फर-फर-फर फहर उठा
अकबर का अभिमानी निशान।
बढ़ चला कटक लेकर अपार
मद-मस्त द्विरद पर मस्त-मान॥

कोलाहल पर कोलाहल सुन
शस्त्रों की सुन झनकार प्रबल।
मेवाड़-केसरी गरज उठा
सुनकर अरि की ललकार प्रबल॥

हर एकलिङ्ग को माथ नवा
लोहा लेने चल पड़ा वीर।
चेतक का चंचल वेग देख
था महा-महा लज्जित समीर॥

आकाश की ओर डाली, पृथ्वी की ओर देखा, फिर आगे पीछे दायें बायें दीवार की तरह खड़े गगनचुम्बी पहाड़ों पर याचना की कातर आँखें फेरीं; किन्तु शरण देने से सबने इन्कार कर दिया। चिल्लाने का यत्न किया, किन्तु गला रुँध गया, भागने की इच्छा की किन्तु पैर बँध गये, उड़ने की अभिलाषा हुई किन्तु पंख नहीं थे। आँखें मूँद लीं। भीलों ने उसे पकड़ लिया और उसके हाथ-पैर बाँध दिये।

उदारचेता! तू उसी समय कुछ विश्वस्त सिपाहियों के साथ एक दरी से निकला, भीड़ देखकर पलक भाँजते वहाँ पहुँच गया। देखा मानसिंह बन्धन में है, लज्जा और दुःख से झुकी हुई उसकी आँखें पृथ्वी पर कुछ खोज रही हैं। तूने झट बंधन खोलकर कहा—भीलो! यह कायरता है, युद्ध नहीं धोका है विजय नहीं, लघुता है गौरव नहीं। तुम्हारी वीरता की परीक्षा तो भावी महासमर में होगी जब तुम्हारी युद्ध-कला देखकर भेड़ों और बकरियों की तरह भागते हुए वैरी दिल्ली पहुँच जायँगे। तुम मानसिंह से क्षमायाचना करो और प्रेम सहित विदा दो। महाराणा की जय के निनाद से पहाड़ गूँज उठा और दरियों ने उसे दुहरा दिया।

महारथी! सावन का महीना था, आसमान पर घटा लगी हुई थी, आसमान आँखें मूँदकर सो रहा था, दोनों सेनाएँ युद्ध के लिए खड़ी थीं, मेघाच्छन्न आकाश में कभी-कभी बिजली चमक जाती थी, इधर तलवार। तू चेतक पर चढ़कर सेना का संचालन कर रहा था, उधर हाथी पर चढ़कर मानसिंह। बादल ने कड़ककर कहा—'युद्ध आरम्भ करो'। देर न थी। 'हर हर महादेव' के निनाद से नीरव वातावरण कोलाहलमय हो गया। तेरे वीर सैनिक दूने उत्साह से मुग़ल-सेना पर टूट पड़े। मरने-कटने की बान पुश्तैनी थी। प्राणों की रंचक परवाह न कर, रणमत्त वीर मुग़लों को गाजर-मूली की तरह काटने लगे। क्षण भर पहले जो पृथ्वी घिरे हुए बादलों से पानी की आशा रखती थी, उस पर उससे भी अधिक मूल्यवान् शोणित तीव्र गति से बहने लगा। लहू देख-देखकर राजपूतों की हिंसा-

अपनी तलवार दुधारी ले
भूखे नाहर सा टूट पड़ा !
कलकल मच गया, अचानक दल
आश्विन के घन-सा फूट पड़ा ॥

राणा की जय, राणा की जय,
वह आगे बढ़ता चला गया ।
राणा प्रताप की जय करता
राणा तक चढ़ता चला गया ॥

रख लिया छत्र अपने सिर पर
राणा-प्रताप-मस्तक से ले ।
ले स्वर्ण-पताका जूझ पड़ा
रण-भीम-कला अन्तक से ले ॥

झाला को राणा जान मुगल
फिर टूट पड़े वे झाला पर ।
मिट गया वीर जैसे मिटता
परवाना दीपक-ज्वाला पर ॥

झाला ने राणा-रक्षा की,
रख दिया देश के पानी को ।
छोड़ा राणा के साथ-साथ
अपनी भी अमर कहानी को ॥

अरि विजय-गर्व से फूल उठे,
इस तरह हो गया समर-अन्त ।
पर किसकी विजय रही बतला
ऐ सत्य सत्य अम्बर अनन्त ॥

पश्चिम की ओर गगन पर
छाई सन्ध्या की लाली ।
बिछ गई सुनहली चादर,
पीली पड़ गई बनाली ॥

वृत्ति और भी अधिक जागरित होती जाती थी। वे एक-एक क़दम आगे ही बढ़ते थे। मुग़ल-दल विस्मित और चिन्तित हो उठा।

समरकेसरी! तू चपलगति चेतक पर सवार होकर आगे-पीछे इधर-उधर सब ओर विद्यमान था। तू अपने अभ्यस्त हाथों की तीक्ष्ण तलवार से लोथों पर लोथें लगा रहा था, दुधारी की चोट खा-खाकर वैरी धराशायी हो रहे थे। तू एक क्षण में सहस्रों के शिर धड़ से अलग कर देता था, तेरी भीषण मूर्ति और अदम्य उत्साह देखकर तेरे वीर सैनिकों ने प्राणों का मोह छोड़ दिया था। बड़ा भीषण युद्ध था।

वीर-हृदय! कुछ देर तक शत्रुओं ने बड़ी मुस्तैदी के साथ सामना किया, किन्तु तेरा रण-कौशल देखकर उनके धैर्य का बाँध टूट गया। अड़े रहने की चेष्टा करने पर भी क्रम बिगड़ गया। भागने के सिवा और कोई चारा नहीं था। जान लेकर भगे। तूने बनास नदी के उस पार तक पीछा किया किन्तु हाय, इस तरह तेरी सेना मैदान में आ गई। उधर भागते हुए मुग़ल, मानसिंह के सतत प्रयास से लौट पड़े। फिर युद्ध आरम्भ हो गया।

नरसिंह! इस बार शत्रुओं ने आग बरसानेवाली तोपों से वार किया, धाँय धाँय गोले बरसने लगे, रण-क्षेत्र में चिनगारियाँ उड़ने लगीं, धुएँ के अन्धकार से समर-भूमि भयानक हो गई किन्तु तेरे राजपूतों को यह बाधा अणुमात्र भी विचलित नहीं कर सकी। तूने तोपों के मुँहों को फेरने का आदेश दिया, वीर पागल हो गये, स्वाधीनता के लिए जान सस्ती पड़ गई। भनभनाते हुए गोले आकर सीने में घुस जाते थे, लेकिन वे बढ़ते थे, तोपों से निकली हुई अग्नि की ज्वाला शरीर को झुलस देती थी, लेकिन वे आगे ही बढ़ते थे, उड़ती हुई चिनगारियों के गिरने से अंग अंग जल रहा था, लेकिन वे बढ़ते जाते थे, फफोले फूट-फूटकर बह रहे थे लेकिन वे बढ़ रहे थे और कराहते हुए म्रियमाण सगे भाई-बन्धु आँखों के सामने तड़प रहे थे लेकिन वे

लोट-लोट सह व्यथा महान्,
यश का फहरा अमर-निशान।
राणा-गोदी में रख शीश
चेतक ने कर दिया पयान॥

घहरी दुख की घटा-नवीन,
राणा बना विकल बल-हीन।
लगा तलफने बार बार
जैसे जल-वियोग से मीन॥

"हा! चेतक, तू पलकें खोल,
कुछ तो उठकर मुझसे बोल।
मुझको तू न बना असहाय
मत बन मुझसे निठुर अबोल॥

मिला बन्धु जो खोकर काल
तो तेरा चेतक, यह हाल!
हा चेतक, हा चेतक, हाय",
कहकर चिपक गया तत्काल॥

"अभी न तू तुझसे मुख मोड़,
न तू इस तरह नाता तोड़।
इस भव-सागर-बीच अपार
दुख सहने के लिए न छोड़॥

वैरी को देना परिताप,
गज-मस्तक पर तेरी टाप।
फिर यह तेरी निद्रा देख
विष-सा चढ़ता है संताप॥

हाय, पतन में तेरा पात,
क्षत पर कठिन लवण-आघात।
हा, उठ जा, तू मेरे बन्धु,
पल-पल बढ़ती आती रात॥

अपने अभ्यास के अनुसार आगे ही बढ़ रहे थे! वाह री स्वतन्त्रते! तुझमें कितना आकर्षण है, तू अभी कितनी दूर है।

घायल सिंह की तरह वीर राजपूत बढ़ते ही गये, एक-एक फाल बढ़ते ही गये, मरते-मिटते अपने लक्ष्य तक पहुँच कर विकट तोपों के विवृत उग्र मुखों को विपरीत दिशा की ओर फेर दिया, मेवाड़ सिंह खूँखार भेड़िये की तरह शत्रुओं पर टूट पड़े, जीवन का सौदा सस्ता हो गया।

विश्ववीर! भाले बरछों से फिर मुठ-भेड़ हुई, घमासान युद्ध आरम्भ हो गया, हाथियों ने हाथियों पर, घोड़ों ने घोड़ों पर और सवारों ने सवारों पर बड़ी तीव्रता से आक्रमण किया। दोनों दलों के वीर-सैनिक एक दूसरे के खून की प्यास से व्याकुल हो रहे थे, रुण्ड-मुण्ड से मेदिनी पटने लगी, कहीं घोड़े भाग रहे थे, कहीं हाथी चिग्घाड़ रहे थे, कहीं लाशों पर लाशें बिखर रही थीं; कभी लहू की बाढ़ से मुरदे बह जाते थे, तो कभी शोणित के वेग से पृथ्वी कट जाती थी। बड़ी भीषण मारकाट थी। हार-जीत का पता नहीं था। विजय हिंडोले पर थी, कभी इधर कभी उधर। बड़ा लोम-हर्षण संग्राम था प्रताप!

महाकाल! दोनों दलों में हाहाकार मचा हुआ था, खून पर खून हो रहे थे; किन्तु तेरी समरान्ध आँखें किसी और को खोज रही थीं। हाथ का प्रलयंकर भाला किसी विशेष वैरी को ढूँढ़ रहा था और तेरा तेजस्वी चेतक किसी अन्य शत्रु के अन्वेषण में लगा हुआ था। यह था देशद्रोही मानसिंह जिसकी तलवार अपनी ही जाति के रक्त की प्यास से व्याकुल हो रही थी, जिसको मेवाड़ की स्वतन्त्रता खटक रही थी, जिसको अपनी जाति का गौरव अखर रहा था और जिसका हृदय हिन्दुत्व को मिटाकर ही सन्तुष्ट होना चाहता था।

प्रतापी प्रताप! अचानक तेरी दृष्टि उस रणमत्त हाथी पर पड़ी, जिस पर बैठकर वीर सैनिकों से घिरा हुआ मानसिंह अपनी सेना का संचालन कर रहा था। तेरे शरीर का रक्त उबल उठा और क्रोध की ज्वाला से देह जल उठी।

होता धन-यौवन का ह्रास,
पर है यश का अमर-विहास।
राणा रहा न, वाजि-विलास,
पर उनसे उज्ज्वल इतिहास॥

बनकर राणा सदृश महान्
सीखें हम होना क़ुर्बान।
चेतक सम लें वाजि ख़रीद,
जननी-पद पर हों बलिदान॥

आओ खोज निकालें यन्त्र
जिससे रहें न हम परतन्त्र।
फूँकें कान-कान में. मन्त्र।
बन जायें स्वाधीन-स्वतन्त्र॥

हल्दीघाटी-अवनी पर
सड़ती थीं बिखरी लाशें।
होती थी घृणा घृणा को,
बदबू करती थीं लाशें॥

चेतक उड़ा, शत्रु-सेना को रौंदता हुआ हाथी के समीप जा धमका, क्षणभर लड़ा, फिर अपने अगले पैर हाथी के कुम्भ-स्थल पर जमा दिए। भाला गोंहुवन की तरह मानसिंह की ओर लपका, फीलवान हाथी से गिर पड़ा और उस मुरदे को सिपाहियों ने कुचलकर चूर कर दिया। बिना महावत के हाथी चिग्घाड़ कर भाग गया। मेवाड़ के दुर्भाग्य से मानसिंह की रक्षा हुई। बड़ा भयंकर समर था।

राणा प्रताप! मानसिंह तो बच गया लेकिन तेरे ऊपर असंख्य मुगल टूट पड़े। सर्पों में गरुड की तरह तू अपनी दुधारी से शत्रुओं को काटने लगा किन्तु वे रक्तबीज के समान घटते नहीं बढ़ते ही थे। तू शत्रु-सेना से निकलकर अपनी सेना में आ जाना चाहता था, लेकिन उस कठिनव्यूह से निकल जाना सरल नहीं था। दिन भर काटते-काटते तेरी तलवार थक गई थी, चेतक शिथिल हो गया था और तेरी देह घावों से छलनी हो गई थी। उससे निर्झर की तरह रक्त बह रहा था तो भी तू बड़े उत्साह से मुग़लों को यमपुरी का मार्ग दिखा रहा था। मेवाड़ का झण्डा शोणित से रक्त हो गया था और महामृत्यु तुझे अपनी गोदी में बिठाने का प्रयास कर रही थी। उसी समय मेवाड़ के सौभाग्य से शत्रुओं के शिर पर अपना घोड़ा दौड़ाता हुआ झालामान्ना वहाँ पहुँच गया। उसने तेरे सिर से छत्र और हाथ से झण्डा छीन लिया। शत्रुओं ने उसे ही महाराणा समझा और चारों ओर से घेर लिया। तू बचकर निकल गया। झालामान्ना की तलवार बिजली की तरह तड़प-तड़पकर शत्रुओं पर गिरने लगी, मुग़लों की लाशों का पहाड़ लग गया, लेकिन असंख्य तलवारों के प्रकाश में एक तलवार की ज्योति ही कितनी! झालामान्ना के शिर से मेवाड़ का छत्र गिरा और वहीं लाशों के बीच कहीं छिप गया। मेवाड़ का झण्डा गिरा और रक्त से लथपथ हो गया। अर्धमृत झालामान्ना ने एक बार किसी तरह उसे उठाया, लेकिन क्षण भर के बाद फिर गिरा और वहीं झालामान्ना के मृतशरीर से कफ़न की तरह लिपटकर सो गया।

प्रतापसिंह! मेवाड़-प्राण झालामान्ना स्वदेश-महायज्ञ

रजनी भर तड़प तड़पकर
घन ने आँसू बरसाया।
लेकर संताप सवेरे
धीरे से दिनकर आया॥

था लाल बदन रोने से
चिन्तन का भार लिये था।
शव-चिता जलाने को वह
कर में अंगार लिये था॥

निशि के भींगे मुर्दों पर
उतरी किरणों की माला।
बस लगी जलाने उनको
रवि की जलती कर-ज्वाला।

लोहू जमने से लोहित
सावन की नीलम घासें,
सरदी-गरमी से सड़कर
बजबजा रही थीं लाशें

आँखें निकाल उड़ जाते,
क्षण भर उड़कर आ जाते,
शव-जीभ खींचकर कौवे
चुभला-चुभलाकर खाते॥

में अपने प्राणों की आहुति देकर मुक्त हो गया। उसकी अमर कीर्ति से यह निखिल सृष्टि सुरभित हो गई। मुग़ल-दल विजय-गर्व से उन्मत्त हो उठा। लेकिन विजय किसकी हुई, उसको तो उस दिन की घिरी हुई घटा ही बता सकती, जिसने बिजली की आँखों से बार-बार देखा था।

अमर प्रताप! तेरी हल्दीघाटी के बलिदानों ने संसार के सामने एक ऐसा आदर्श रख दिया जिसकी कल्पना से ही देह पुलकित हो जाती है और आँखें सजल। थर्मापोली के समर में इतनी शक्ति कहाँ, जो तेरे महासमर की समता करे।

दयासागर! जब हल्दीघाटी के महायुद्ध में जीवन दूर और मृत्यु निकट होती जाती थी तभी एक राजपूत पहाड़ की चोटी पर बैठकर, मृत्यु-पीड़ा से तड़पते हुए अपने सगे भाई-बन्धुओं को देख रहा था सपूतों का अमर बलिदान देख रहा था और देख रहा था मेवाड़-गौरव की रक्षा के लिए राजपूतों का आत्म-विसर्जन। वह आया तो था मुग़लों की ओर से अपने भाइयों का शिर काटने; लेकिन अचानक उसका चित्त बदल गया, उसे अपने ऊपर घृणा हुई और क्रोध भी। अपनी जननी-जन्मभूमि की दुर्दशा देखकर उसकी आँखें डबडबा गईं, वह सिसकियाँ भरने लगा। इधर तुमुल-युद्ध हो रहा था, उधर वह फूट-फूटकर रो रहा था। रोते-रोते उसने देखा कि तू वैरियों के व्यूह से निकल रहा है और तेरी रक्षा के लिए झालामान्ना अपने शत्रुओं को तलवार के घाट उतारकर मृत्यु का आलिंगन कर रहा है। उसने सोचा, यदि झाला कि जगह में होता, और रो पड़ा। देश को धोका देकर जिस शान्ति के लिए लालायित हो रहा था उसमें उसे घोर अशान्ति मिली। जिस सुख के लिए वीर-प्रसविनी मेवाड़भूमि को लात मारकर चला गया था उसमें उसे असह्य दुःख था। वह पागल की तरह उठा और चेतक के पीछे चल पड़ा। वह चाहता था तुझसे क्षमा माँगकर अपना प्रायश्चित्त करना, उसकी इच्छा थी तेरे पैरों पर मस्तक रख-कर घड़ी भर रो लेने की और उसकी अभिलाषा थी तेरे

आँखों के निकले कीचर,
खेखार-लार, मुर्दों की।
सामोद चाट, करते थे
दुर्दशा मतंग-रदों की ॥

उनके न दाँत धँसते थे
हाथी की दृढ़-खालों में।
वे कभी उलझ पड़ते थे
अरि-दाढ़ी के बालों में ॥

चोटी घसीट चढ़ जाते
गिरि की उन्नत चोटी पर।
गुर्रा-गुर्रा भिड़ते थे
वे सड़ी-गड़ी पोटी पर ॥

ऊपर मँडरा मँडराकर
चीलें बिट कर देती थीं।
लोहू-मय लोथ झपटकर
चंगुल में भर लेती थीं ॥

पर्वत-वन में, खोहों में,
लाशें घसीटकर लाते,
कर गुत्थम-गुत्थ परस्पर
गीदड़ इच्छा भर खाते ॥

दिन के कारण छिप-छिपकर
तरु-ओट झाड़ियों में वे
इस तरह मांस चुभलाते
मानो हों मुख में मेवे ॥

खा मेदा सड़ा हुलककर
कर दिया वमन अवनी पर।
झट उसे अन्य जम्बुक ने
खा लिया खीर सम जी भर ॥

वरदान से अपने को अभय बनाने की। वह जा रहा था और उसके हृदय का पाप आँखों के पथ से बह रहा था। उसने देखा, चेतक के पीछे खुरासानी और मुल्तानी नाम के दो शत्रु पड़े हैं। उसने तुरत म्यान से तलवार निकालकर दोनों को वहीं ढेर कर दिया और तुझे पुकारा, 'ऐ नीला घोड़ारा असवार'। तूने मुड़कर देखा और पहचान लिया! तू बोल उठा, इतने राजपूतों के शोणित से तेरी प्यास नहीं बुझी तो आ, अपनी तलवार के पानी से तेरी प्यास बुझा दूँ। लेकिन वह दौड़कर तेरे पैरों से लिपट गया और सिसक-सिसककर रोने लगा। तेरी आँखों में भी स्नेह के आँसू आ गये। पाषाण-हृदय पर्वत निर्झर-मिस रो रहा था, तड़प-तड़पकर बादल रो रहा था और भाई के साथ फूट-फूटकर तू रो रहा था। तुझे हल्दीघाटी के बलिदानों के बदले बन्धु-स्नेह मिला। तेरे चेहरे पर सन्तोष का एक हलका प्रकाश था, लेकिन यह क्या। चेतक छटपटा क्यों रहा है? तुम दोनों ने व्याकुल आँखों से घोड़े की ओर देखा। घावों से अविराम रक्त बहने के कारण वह क्षणभंगुर संसार छोड़ रहा था। लाख यत्न किया लेकिन वह स्वामि-भक्त चेतक वहाँ चला गया जहाँ उसे सांसारिक झगड़ों का भय नहीं था। हाय, जिन आँखों में क्षण भर पहले स्नेह के आँसू छलछला रहे थे उनमें दुःख के आँसू भर गये। चेतक की विरह-जन्य पीड़ा से तिलमिला तो गया, लेकिन तत्क्षण तेरा वीर-हृदय सँभल गया। तू बन्धुदत्त वाजि पर सवार होकर कमलमीर की ओर चल पड़ा। चिर वियोग के बाद तेरा और शक्तिसिंह का मिलन कितना मधुर था; लेकिन चेतक की मृत्यु!

वीर वैरागी! अब तेरे दिन भागने के और रात जागने की आई! तू हल्दीघाटी के युद्ध के बाद चावण्ड के समीप जावरमाला की गुफाओं में दिन बसर करने लगा। यह स्थान उस जगह है, जहाँ सुदृढ़ गढ़ की तरह चारों ओर दुर्भेद्य पहाड़ खड़े होकर तेरी रक्षा कर रहे थे। शत्रुओं के आक्रमण का बिल्कुल भय नहीं था। समीप ही आजादी के लोभ से तलवार लेकर मरनेवाले भीलों की बस्ती थी। तेरी

पावस बीता पर्वत पर
नीलम घासें लहराईं।
कासों की श्वेत ध्वजाएँ
किसने आकर पहराईं ?

नव पारिजात-कलिका का
मारुत आलिङ्गन करता।
कम्पित-तन मुसकाती है
वह सुरभि-प्यार ले बहता॥

कर स्नान नियति-रमणी ने
नव हरित वसन है पहना।
किससे मिलने को तन में
झिलमिल तारों का गहना॥

पर्वत पर, अवनीतल पर,
तरु-तरु के नीलाभ दल पर,
यह किसका बिछा रजत-पट
सागर के वक्षःस्थल पर॥

वह किसका हृदय निकलकर
नीरव नभ पर मुसकाता ?
वह कौन सुधा वसुधा पर
रिमझिम-रिमझिम बरसाता॥

-और तेरे बच्चों की रक्षा के लिए उन्होंने प्राणों का-ममत्व छोड़ दिया था। वे जंगलों और.पहाड़ों में शत्रुओं की टोह लगाकर टूट पड़ते थे और उन्हें तितर-बितर करके छिप जाते थे।

शूर स्वाधीन! स्वाधीनता तेरे प्राणों के साथ एका-कार हो गई थी। तुझे दो ग्रास पवित्र भोजन का मिलना कठिन था। जिन राजकुमारों को दूध-बताशा से भी अनिच्छा थी, वे मुट्ठी भर मटर के लिए तरसते थे। मखमली सेज भी जिनके शरीर में गड़ती थी वे काँटों पर दौड़ते थे। जो महलों में फूलों के ऊपर टहलने से भी थक जाते थे वे पथरीले पथों में ठोकर खा-खाकर गिरते थे। किस लिए? इसलिए कि शिशोदिया के निर्मल यश में कहीं कलंक की कालिमा न लग जाय, इसलिए कि -मेवाड़ का मस्तक कहीं झुक न जाय, इसलिए कि अधर्म की वेदी पर कहीं धर्म का बलिदान न हो और इसलिए कि द्रौपदी की तरह किसी दुःसासन द्वारा स्वर्गा-दपि गरीयसी जननी-जन्मभूमि का चीर न खींचा जाय।

छत्रहीन सम्राट्! चाँदनी रात थी, तू गुफा के द्वार पर बैठकर मेवाड़-उद्धार की विकट समस्या सुलझा रहा था, भीतर मेवाड़ की राजराजेश्वरी भूख से तड़पते हुए बच्चों को घासों की रूखी रोटियों का एक एक टुकड़ा दे-देकर बझा रही थी। कई दिन के निर्जल व्रत के बाद बच्चे पारण करने में लगे हुए थे। इतने में एक वनबिलाव ने तेरी कन्या के हाथ से रोटी छीन ली। वह चिल्ला उठी। तेरा ध्यान टूटा। तूने दौड़कर उस बिलखते हुए बच्चे को गोदी में उठा लिया -और रोने का कारण पूछा। उसने अपनी तुतली बोली में दुःख-कथा कह सुनाई। तेरा जो हृदय अनेक विघ्नबाधाओं की आँधी से हिमाचल के समान अटल रहा वही आज बेटी की बातें सुनकर हिम की तरह पिघल गया। झालामान्ना के मरने का दुःख हुआ, चेतक के वियोग की पीड़ा हुई, मेवाड़-वाहिनी के विनष्ट होने का शोक हुआ और शत्रु विजित -गढ़ों के विरह से चिन्ता हुई; लेकिन तेरा हृदय अरावली के -समान ही दृढ़ रहा। किन्तु आज वह पीपल के पत्ते के समान चंचल हो गया। तू सन्धि-पत्र लिखने चला किन्तु वीर-

घूँघट-पट खोल शशी से
हँसती है कुमुद-किशोरी।
छवि देख देख बलि जाती
बेसुध अनिमेष चकोरी॥

इन दूर्वों के तुनगों पर
किसने मोती बिखराये ?
या तारे नील-गगन से
स्वच्छन्द विचरने आये॥

या बँधी हुई हैं अरि की
जिसके कर में हथकड़ियाँ,
उस पराधीन जननी की
बिखरी आँसू की लड़ियाँ॥

इस स्मृति से ही राणा के
उर की कलियाँ मुरझाईं।
मेवाड़-भूमि को देखा,
उसकी आँखें भर आईं॥

अब समझा साधु सुधाकर
कर से सहला-सहलाकर।
दुर्दिन में मिटा रहा है
उर-ताप सुधा बरसाकर॥

जननी-रक्षा-हित जितने
मेरे रणधीर मरे हैं,
वे ही विस्तृत अम्बर पर
तारों के मिस बिखरे हैं॥

मानव-गौरव-हित मैंने
उन्मत्त लड़ाई छेड़ी।
अब पड़ी हुई है माँ के
पैरों में अरि की बेड़ी॥

हृदया रानी ने कलम पकड़कर कहा, प्राणनाथ! सन्धि-पत्र लिखने का अधिकार तुम्हें नहीं है, यह अधिकार तो उन्हें प्राप्त है जिन्होंने हल्दीघाटी के रण में प्राणोत्सर्ग किये हैं, यह अधिकार झालामान्ना और चेतक को है और उस मेवाड़-वाहिनी को जिसने अपना जीवन देकर मेवाड़ को जीवन दिया है। तुम्हारे रण के कारण कितनी माताओं की गोदियाँ सूनी पड़ गईं, कितनी ललनाओं के सिन्दूर धुल गये और हाथ की चूड़ियाँ टूट गईं और प्राणवल्लभ! तुम सन्धि-पत्र लिखते हो! कभी नहीं, तुम सन्धि-पत्र नहीं लिख सकते। यदि मेवाड़ की रक्षा का भार तुमसे सहन नहीं होता तो आज से मैं स्वाधीनता के लिए लड़ूँगी, तुम अपनी तलवार मुझे दो, मैं चण्डी बन जाऊँ प्रियतम!

रानी की बातें सुनकर तेरी मोह-निद्रा टूट गई। तूने रानी को लज्जा की आँखों से देखा। इतने में वैरियों ने तुझे घेर लिया और तू अपने भूखे परिवार के साथ भीलों की सहायता से कहीं छिप गया। क्या तू बता सकता है वह कठोर तप किस लिए था?

हिन्दू-सूर्य! शत्रुओं को चावण्ड का भी पता लग गया! अब तुझे मेवाड़ में तिल भर भी जगह सुख से विश्राम करने की नहीं थी। तू मेवाड़ छोड़ देने का निश्चय कर अरावली की चोटी पर चढ़ गया और वहीं से शोक-वसना जननी का मौन-विलाप सुनकर रो पड़ा, किन्तु रोने का समय कहाँ था? तूने झुककर नमस्कार किया। रानी ने अपने अँचरे का कोना पकड़कर वन्दना की, और बच्चों ने अपने छोटे-छोटे हाथों से प्रणाम किया। सब की आँखों में गहरी वेदना के आँसू थे। राजपरिवार दो अंगुल सुरक्षित भूमि के लिए रो रहा था। हाय, स्वतन्त्रता के लिए इतनी कठोर तपस्या! इतनी कठोर यातना!

राष्ट्र-निर्माता! माँ के आँसुओं ने तुझे विदा दी, तू अपनी मातृ-भूमि छोड़कर चलने के लिए प्रस्तुत हो गया, तब तक तेरी दृष्टि भामाशाह पर पड़ी। उसको तूने भगवान् एकलिंग के आशीर्वाद के समान देखा। वह वृद्ध तपस्वी

मर मिटे वीर जितने थे,
वे एक-एक कर आते।
रानी की जय-जय करते,
उससे हैं आँख चुराते॥

हो उठा विकल उर-नभ का
हट गया मोह-घन काला।
देखा वह ही रानी है
वह ही अपनी तृण-शाला॥

बोला वह अपने कर में
रमणी कर थाम "क्षमा कर,
हो गया निहाल जगत में,
मैं तुझे सी रानी पाकर"॥

इतने में वैरी-सेना ने
राणा को घेर लिया आकर।
पर्वत पर हाहाकार मचा
तलवारें झनकीं बल खाकर॥

तब तक आये रणधीर भील
अपने कर में हथियार लिये।
पा उनकी मदद छिपा राणा
अपना भूखा परिवार लिये॥

लकड़ी के सहारे आकर तेरे चरणों से लिपट गया और आगे अतुल सम्पत्ति रखकर बोला—महाराणा, प्राणों पर अधिक ममता न रहने पर भी तुझे देश के लिए जीना पड़ेगा, तुझे मेवाड़ नहीं छोड़ सकता, तेरे रोम-रोम से वह अपने सुखमय भविष्य की आशा रखता है। जब तक तू इसका उद्धार नहीं कर लेगा, ऋण से मुक्त नहीं होगा, प्रताप! तू मेरी इस सम्पत्ति से वेतन-भोगी सैनिक एकत्र करके ऐसा हड़कम्प मचा दे कि सारा विश्व हिल उठे और मेवाड़ के कण-कण में तेरे प्रताप की ज्वाला जल उठे जिससे झुण्ड के झुण्ड शत्रु मेवाड़ छोड़कर भेड़ों की तरह भाग निकलें। मुझे पूर्ण विश्वास है कि इस बार तुम्हारी विजय-वैजयन्ती मेवाड़ के क़िले पर गर्व के साथ फहरेगी। भामाशाह चुप हो गया लेकिन पहाड़ों की दर्रियों ने उसके कहे हुए शब्दों को दुहरा दिया। तेरे शरीर में बिजली दौड़ गई, जीवन में शक्ति आ गई, प्राणों में बल आ गया, आँखों में ज्योति आ गई और धूमिल चेहरा आशा से चमक उठा। तू ने कहा—"मन्त्रिप्रवर! यदि मुझे मेवाड़ नहीं छोड़ सकता तो मैं भी अब मेवाड़ को स्वतन्त्र बनाकर ही छोड़ूँगा। वृद्ध मन्त्री की आशा शिर पर है, यह सम्पत्ति ही मेवाड़ के भाग्य की ऊषा है। वृद्ध तपस्वी! मेवाड़ स्वतन्त्र होकर रहेगा, जन्मभूमि स्वतन्त्र होकर रहेगी और प्रताप स्वतन्त्र होकर रहेगा, अब तेरे प्रताप को संसार की कोई भी शक्ति नहीं रोक सकती।" भामाशाह चला गया, उसके मुख पर एक प्रकाश था और हृदय में उल्लास।

मेवाड़-प्राण! स्वाधीनता के लिए सैनिक एकत्र होने लगे। वर्दियाँ बदल दी गईं, तलवारों पर पानी चढ़ गया, भाले बरछों के मुरचे छुड़ा दिये गये, नये-पुराने समस्त हथियार युद्ध के लिए झनझना उठे। थोड़े ही दिनों में सिपाहियों की एक ठोस सेना तैयार हो गई।

मेवाड़-रक्षक! अपनी सशस्त्र टोली लेकर तूने बड़ी तीव्रता से देवीर पर आक्रमण किया। मेवाड़ के भाग्य का सूर्योदय हुआ और सारे मुग़ल मारे गये। क़िले पर मेवाड़ का झण्डा गड़ गया। तेरे शिर पर ख़ून सवार था। तूने

यह कहकर उसने निशि में
अपना परिवार जगाया।
आँखों में आँसू भरकर
क्षण उनको गले लगाया॥

बोला—"तुम लोग यहीं से
माँ का अभिवादन कर लो।
अपने-अपने अन्तर में
जननी की सेवा भर लो॥

चल दो, क्षण देर करो मत,
अब समय न है रोने को।
मेवाड़ न दे सकता है
तिल भर भी भू सोने को॥

चल किसी विजन कोने में
अब शेष बिता दो जीवन।
इस दुखद भयावह ज्वर की
यह ही है दवा सजीवन॥"

सुन व्यथा-कथा रानी ने
आँचल का कोना धरकर,
कर लिया मूक अभिवादन
आँखों में पानी भरकर॥

हाँ, काँप उठा रानी के
तन-पट का धागा-धागा।
कुछ मौन-मौन जब माँ से
अंचल पसार कर माँगा॥

बच्चों ने भी रो-रोकर
की विनय वन्दना माँ की।
पत्थर भी पिघल रहा था
वह देख देखकर झाँकी॥

कुम्भलगढ़ पर चढ़ाई की और चीन-चीनकर एक-एक शत्रु को मार डाला। गढ़ पर विजय-वैजयन्ती फहरा उठी! इस तरह तेरी सेना आँधी की तरह बढ़ने लगी। तूने अपने शौर्यबल से थोड़े ही दिनों में एक-एक कर समस्त मेवाड़ पर अधिकार जमा लिया। दिशाओं में जय-निनाद गूँज उठा और निखिल सृष्टि तेरी कीर्ति-सुरभि से सुरभित हो उठी। मेवाड़ के एक-एक कण में आनन्द का महासागर लहर रहा था। बड़े समारोह के साथ देश के कोने-कोने में विजयोत्सव मनाया गया। पेड़ों पर खग-कुल ने तेरे यश का गान किया, आकाश ने रात में मनौती के दीप बाले, सूर्य चन्द्र ने आरती उतारी, पहाड़ों के झरनों ने अपनी कल-कल ध्वनि में तेरे गौरव का कहानी कही और सरिताएँ विजय-समाचार सुनाने के लिए सागर की ओर दौड़ पड़ीं।

रण-श्रान्त! तू लड़ते-लड़ते थक गया था। अब तुझे विश्राम लेने की इच्छा हो रही थी। तू विश्व के वक्ष पर अपने व्यक्तित्व की एक छाप छोड़कर वण्डोली की पवित्र समाधि में सो गया। वह गहरी नींद आज तक नहीं टूटी।

मेवाड़-उद्धारक! आज मैं अपने तैंतीस करोड़ सह-योगियों के साथ तुझे जगा रहा हूँ।

वीर! तू समाधि की चट्टानों को फेंक दे और गरज कर उठ जा। खल-दल चकित और चिंतित हो उठे। वैरी का मणिमय सिंहासन भय से काँप उठे और पराधीन भारत को उसका खोया हुआ सेनापति मिल जाय। अस्तु।

महान्! इन्हीं कतिपय घटनाओं को मैंने कविता का रूप दिया है। यह खण्डकाव्य है अथवा महाकाव्य—इसमें सन्देह है, लेकिन तू तो निःसन्देह महाकाव्य है। तेरे जीवन की एक-एक घटना संसार के लिए आदर्श है और हिन्दुत्व के लिए गर्व की वस्तु।

श्लाघ्य देव! मेरी शैली भिन्न है और पथ अलग। जब तू स्वतन्त्र है तो तेरे कीर्ति-कीर्त्तन में यदि मैं स्वतन्त्र पथ का अवलम्बन न करूँ तो उसमें कलंक नहीं लग जायेगा?

खन-खन-खन मणिमुद्रा की
मुक्ता की राशि लगा दी ।
रत्नों की ध्वनि से वन की
नीरवता सकल भगा दी ॥

"एकत्र करो इस धन से
तुम सेना वेतन-भोगी ।
तुम एक बार फिर जूझो
अब विजय तुम्हारी होगी ॥

कारागृह में बन्दी माँ
नित करती याद तुम्हें है ।
तुम मुक्त करो जननी को
यह आशीर्वाद तुम्हें है" ॥

वह निर्बल वृद्ध तपस्वी
लग गया हाँफने कहकर ।
गिर पड़ी लार अवनी पर,
हा उसके मुख से बहकर ॥

वह कह न सका कुछ आगे,
सब भूल गया आने पर ।
कटि-जानु थामकर बैठा
वह भू पर थक जाने पर ॥

राणा ने गले लगाया
कायरता धो लेने पर ।
फिर विदा किया भामा को
घुल-घुल कर रो लेने पर ॥

खुल गये कमल-कोषों के
कारागृह के दरवाजे ।
उससे बन्दी अलि निकले
संगर के बाजे बाजे ॥

इसी भाव से मैंने अपना पथ अलग बनाया, अपनी कविता परमुखापेक्षी नहीं रक्खी, किसी के द्वार पर कल्पना की भीख नहीं माँगी और न किसी के राग में राग ही मिलाया।

मेरा पथ आरम्भ से अन्त तक शीशे की तरह निर्मल और मनोहर है, अन्य पथों की तरह बबूल और ताड़ के पेड़ आकर उसके सौन्दर्य को नष्ट नहीं करते हैं। उसमें कल्प-वृक्षों की सुखद छाया है, उसका यात्री आराम से अपने लक्ष्य तक पहुँच सकता है, उसकी मनोहरता पथिक को मोहे बिना नहीं रह सकती क्योंकि तू साथी की तरह उसके साथ हँसता बोलता रहेगा।

क्षमाशील! मानव की सृष्टि ही त्रुटियों से हुई है तो भला कब उसकी रचना त्रुटियों से अलग रहेगी? यह काव्य निर्दोष है इसमें सन्देह है, अनेक त्रुटियाँ होंगी। तू उन्हें, बालक जानकर, क्षमा कर दे और वरदान दे कि लेखनी के रंग-बिरंगे फूलों से वीर-पूजा कर सकूँ। क्या तू मुझे वरदान देगा? समाधि के भीतर से ही एक बार बोल तो!

पुरुषोत्तम! तेरे चरणों ने जिन-जिन स्थानों को स्पर्श किया था, वे सभी तीर्थ के समान ही पवित्र हैं। तू अपने सिंहासन के वर्तमान अधिपति श्रीभूपाल सिंह को और झालामाना के वंशावतंस झालावाड़-नरेश श्री राजेन्द्र सिंह जू देव को शत-शत आशीर्वाद दे, जिनकी कृपा से मैंने उन तीर्थों के दर्शनों का लाभ उठाया है।

गुरुदेव हरिऔधजी ने लेखनी में शक्ति देकर आदरणीय श्रीनारायण जी चतुर्वेदी ने वरदान देकर, प्रिय मित्र मनमोहन जी केजरीवाल ने सम्मान देकर, भाई रामबहोरी शुक्ल और नाथ-संघ (सर्वश्री ठाकुर शहजादसिंह, दूधनाथ पाण्डेय, पद्मनाथसिंह और सूर्यनाथसिंह) ने उत्साह देकर रचना-काल में मेरी उपयुक्त सहायता की है, इसलिए मैं उनका कृतज्ञ हूँ।

देव! तू अब मुझे विदा दे। तेरे गुणों के महासागर से जो मैंने दो-एक मोती चुन लिये हैं उन पर मुझे गर्व है।

शुभम्

पुनरावृत्ति के लिए

'हल्दीघाटी' का इतने अल्पकाल में दूसरा संस्करण हो जाना कोई आश्चर्य नहीं है, मैं पाठकों को इस सुरुचि के लिए धन्यवाद देना कर्त्तव्य नहीं समझता। मैं लिखने के पहले इस बात को अच्छी तरह जानता था कि यह वस्तु उनकी है, इसको अपनाने के लिए बाध्य होंगे; क्योंकि अब भी उनकी रगों में पूर्वजों का गर्म नहीं तो ठण्ढा रक्त प्रवाहित होता रहता है और होता रहेगा। कौन ऐसा कपूत होगा जिसका सीना अपने गत गौरव पर क्षण भर के लिए उन्नत नहीं हो जायगा? हाँ, यह बात उनके लिए लागू नहीं हो सकती जिनके रक्त-वीर्य में ही सन्देह है।

प्राचीन काल में जब मधुर ब्रजभाषा का बोलबाला था, बराबर सुकुमार कल्पनाओं और कोमल पदावलियों से देवी का शृङ्गार हो रहा था। अनेक वादों के इस संघर्ष-युग में भी शृङ्गार की सामग्रियों की प्रचुरता से देवी ऊब रही थी। मुझे कवियों की शृङ्गार-प्रियता असह्य हो गई। मैं प्रताप के साथ चल पड़ा, काई की तरह फटकर वादों ने मार्ग दे दिया। मैं देवी के निकट था। माँ ने पूछा—तेरे हाथों में क्या है? मैंने कहा—तलवार। माँ आश्चर्य से बोल उठी—एँ, तलवार! मैंने कहा—हाँ देवि, तलवार! राणा प्रताप की! इस परतन्त्र और भिखमङ्गों के देश में तेरे शृङ्गार से मुझे घृणा थी और दुःख था, इसलिए तेरे शृङ्गार के लिए रक्त से रँगी हुई यह चुनरी, शोणित की गङ्गा में स्नान की हुई यह तलवार और वायुगति यह चेतक लाया हूँ। स्वीकार है? माँ की आँखों में स्नेह उमड़ रहा था, मुस्कराकर कहा—हाँ! वीर कविता मुँह-मुँह बोल उठी। कुछ नीर-क्षीर-विवेचकों ने मेरी उन त्रुटियों की ओर इङ्गित अवश्य किया है जिनका ज्ञान मुझे लिखने के समय से ही है। अवसर पाते ही मैं सँभालने का प्रयत्न करूँगा। इस बार तो मुझे बिलकुल समय ही नहीं मिला, इसलिए पुस्तक में अधिक सुधार न कर सका।

'हल्दीघाटी' में कुछ मेरे उन प्रिय शब्दों का प्रयोग हो गया है जिन्हें मैं माँ की गोद से ही बोलता आ रहा हूँ। मुझे वे अत्यन्त प्रिय हैं और अपने देश के हैं। जब हल्दीघाटी की रचना मेरी ही लेखनी द्वारा हुई है तब उनका इसमें रहना स्वाभाविक ही है और उनको समझने के लिए किसी कोष की भी आवश्यकता नहीं पड़ती। वे अत्यन्त बोधगम्य हैं, इसलिए उनका निकालना आँखें निकलवा लेने के बराबर है। रह गये मुहाविरे और व्याकरण। मुहाविरे तो वातावरण के अनुसार बनते और बिगड़ते हैं। किसी जगह एक मुहाविरा बोला जाता है, किसी जगह दूसरा। समालोचकों की आकांक्षा की पूर्ति सब बातों में कहाँ तक हो सकती है। व्याकरण के बारे में इतना ही कहना है कि "नैको मुनिर्यस्य वचः प्रमाणम्"। हाँ, दो-एक स्थलों पर 'वचन' की एकता-अनेकता का ख़याल मैंने इसलिए नहीं किया कि प्रवाह भङ्ग होने का भय था। मैं पहले ही से इस बात की चेष्टा में था कि हल्दीघाटी के छन्द निर्झर की तरह अबाध गति से बहते रहें, उनमें वह बिजली पैदा हो जिससे मुर्दों की भी भुजाएँ फड़कने लगें, उनसे वह 'टानिक' उद्भूत हो जिससे पढ़नेवालों का खून बढ़ने लगे और वह प्रकाश फूट पड़े जिससे एक बार सारा राष्ट्र जगमगा उठे। अस्तु।

हिन्दी साहित्य में 'हल्दीघाटी' का प्रचार मेरे अनुमान के बाहर होता जा रहा है। इसका श्रेय राणा प्रताप को और उनके साथियों को है। मैंने तो उनके कर्त्तव्यों के कुछ चित्र जनता के सामने रख दिये हैं, इसलिए नहीं कि पुस्तक—पढ़कर लोग ऊँघने लगें बल्कि इसलिए कि ऊँघते हुओं की आँखें खुल जायँ।

'हल्दीघाटी' लोक-प्रियता ढूँढ़ती हुई नहीं आई बल्कि उसे इस बात का पूरा विश्वास था कि मेरा स्पर्श पाठकों को नस-नस में फैल जानेवाली बिजली के स्पर्श से कम आकर्षक न होगा और एक बार फिर राजपूतों की निद्रित वीरता ताड़ित सर्पिणी की तरह फुफकार उठेगी और जौहर की

ज्वाला से देश प्रज्वलित हो उठेगा। लेकिन खेद, डरपोक हिन्दुओं में न उसे वैसी जाग्रति ही मिली न वैसा जोश ही। राजपूतों की वीरता अब कहानी-सी रह गई है, कहने-सुनने के लिए। अपनी वीरता का सम्मान स्वयं राजपूत ही नहीं कर सके और तो और। ओरछा-नरेश श्रीमान् वीरसिंह जू देव ने गत वर्ष हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ २०००) का देव पुरस्कार देकर हल्दीघाटी का क्षत्रियोचित सम्मान किया था। इस क्षत्रियोचित कार्य की प्रतिक्रिया केवल धन्यवाद देने में पर्यवसित नहीं रह जाती प्रत्युत उनके प्रति मेरा हृदय कृतज्ञता से परिपूर्ण है।

श्री श्यामनारायण पाण्डेय

तृतीय चतुर्थ तथा पंचमावृत्ति

'हल्दीघाटी' के प्रकाशित होने के एक मास बाद ही उसका मिलना कठिन हो जाता है, फिर भी, अनेक कारणों से उसके प्रकाशन में देरी हो ही जाया करती है, इसके लिए हल्दीघाटी के वीर पाठकों से क्षमा चाहता हूँ।

अनेक विद्यार्थियों और हिन्दी-प्रेमियों को 'हल्दीघाटी' आदि से अन्त तक कण्ठस्थ है, इसलिए उसके छन्दों में कुछ परिवर्तन करना उनके प्रति अन्याय होते हुए भी मित्रों के आग्रह से मुझे किसी-किसी छन्द को लेखनी दिखानी पड़ी है जो कदाचित् अधिक खटकने का विषय नहीं होगा।

'हल्दीघाटी' की लोकप्रियता उसके प्रचार से ही सिद्ध है किन्तु उसके स्वाध्यायियों पर उसका क्या असर पड़ा, यह तो मुझे मालूम नहीं; फिर भी उसके प्रभाव से प्रभावित कवियों की बाढ़ अवश्य है। 'हल्दीघाटी' उनके शब्दों में, स्वरों में और छन्दों में गरज रही है जिसकी मुझे प्रसन्नता है।

वसन्तपंचमी
२००० वै० } श्री श्यामनारायण पाण्डेय

आवृत्ति पर आवृत्ति

मुझे बड़ी प्रसन्नता है कि हल्दीघाटी की आवृत्ति पर आवृत्ति हो रही है, प्रतिवर्ष माँग बढ़ती ही जाती है इससे पुस्तक की लोकप्रियता के साथ जन-रुचि का भी पता चलता है। मैं अपने वीरपाठकों को अपने नेता के सम्मान तथा अपनी संस्कृति के प्रति श्रद्धा के लिए धन्यवाद देना नहीं भूल सकता।

काशी
ज्येष्ठ २००६ वै० } श्री श्यामनारायण पाण्डेय

नमस्कार

चौबीस पंक्ति

पावन-विलासमय नमस्कार,
हे ललित-लास-मय नमस्कार।
निधिमय, विकासमय नमस्कार,
हे हे विहासमय नमस्कार॥

जिस अलख-ज्योति से रवि-मयंक,
शोभित करते नभ-नील-अंक।
उस दिव्य-ज्योति को बार-बार,
करता नत-मस्तक नमस्कार॥

विधि-मय विभूति-मय नमस्कार,
हे ब्रह्म, अनामय नमस्कार।
अनुराग-राग-मय नमस्कार,
हे हे विराग-मय नमस्कार॥

जो अजर, अमर, अव्यक्त-रूप,
अविकार, अनघ, अक्षर, अनूप।
जो नभ समान है निराकार,
उस विविध वेश को नमस्कार॥

हे देव-देव, हे दक्ष देव,
हे गुप्त देव, प्रत्यक्ष देव।
आद्यन्त-मध्य, मतिमय उदार,
हे जगन्नियन्ता नमस्कार।

अज्ञात-रूप, अज्ञात-नाम,
अविराम-धाम, अज्ञात-काम ।
क्षणअस्ति नास्ति अममय अपार,
घनश्याम-राममय नमस्कार ॥

परिचय

महाराणा प्रतापसिंह

अरावली - उन्नत - शिखरों पर
सजता रहा रणों को।
अपने शोणित से धोया था
माँ के मृदु-चरणों को॥

बढ़ता रहा प्रताप लगाकर
बाजी निज प्राणों की।
जहाँ हो रही थी वर्षा
चोखे चुभते बाणों की॥

रण-चण्डी को पिला दिया
शोणित-मदिरा का प्याला।
बड़वानल सी धधका दी थी
क्रोधानल की ज्वाला॥

उसके एक इशारे पर
वीरों ने ले तलवारें।
पर्वत-पथ रँग दिये रक्त से,
ले शत-शत खरधारें॥

गूँज रही जावर-माला में
उसकी अमर कहानी।
अब तक हल्दीघाटी के पथ
पर है समर-निशानी॥

रक्षा की तलवार उठाकर
समर किया लाखों से।
पोंछ दिये आँसू प्रताप ने
माता की आँखों से॥

निकल रही जिसकी समाधि से
स्वतन्त्रता की आगी।
यहीं कहीं पर छिपा हुआ है
वह स्वतन्त्र वैरागी॥

जमा सके अधिकार तनिक
खिलजी करके हथियार नहीं।
ठहर सकी क्षणभर इस पर
अकबर की भी तलवार नहीं॥

गोरा बादल के खँडहर से
निकल रही है आग अभी।
स्वतन्त्रता के मन्दिर का
जलता अविराम चिराग अभी॥

दुश्मन की तलवार फिरी
वीरों की बोटी बोटी पर।
अभी वीरता खेल रही है
इसकी उन्नत चोटी पर॥

यही देश राणा प्रताप की
स्वतन्त्रता का अवलम्बन।
इसी भूमि-कण का दर्शन है
शत-शत मन्दिर के दर्शन॥

इसी भूमि की पूजा की
वीरों ने रण की चाहों से।
माँ-बहनों ने जौहर से,
दीनों ने अपनी आहों से॥

इंच-इंच भर धरती तर थी
बहादुरों के ख़ूनों से।
किया गया था नित्य इसी का,
अर्चन प्राण-प्रसूनों से॥

जन-रक्षा के लिए यहीं
वीरों की सेना सजती थी।
वैरी को दहलानेवाली
रण-भेरी नित बजती थी॥

झाला माना

चालीस पंक्ति

निज शरीर की आहुति दूँगा,
किसी बात की चाह नहीं,
मैं प्रताप के लिए मरूँगा
हटो ! हटो !! परवाह नहीं ॥

देख खून पर खून बन्धु का
मरना अब इन्कार नहीं ?
पराधीनता की बेड़ी में
रहना है स्वीकार नहीं ॥

राजपूत हूँ राजपूत, छाती
उत्तान करूँगा अब !
मातृ - भूमि - बलिवेदी पर
अपना बलिदान करूँगा अब ॥

यही समय है मर मिटने का
फिर मेरा उद्धार कहाँ ?
कहाँ, कहाँ भीषण भाला है
बरछी - तीर - कटार कहाँ ?

खौल रहा है ख़ून रगों में
लड़ने के हथियार कहाँ ?
बिजली सी गिरने वाली
वह नागिन-सी तलवार कहाँ ?

कहाँ, कहाँ मेरा घोड़ा है,
आगे पैर बढ़ाऊँगा।
माँ के चरणों पर प्रताप के
पहले शीश चढ़ाऊँगा।

मैं जलता अंगार एक,
अरि-वन में आग लगा दूँगा।
प्यासी है अपने शोणित से
माँ की प्यास बुझा दूँगा॥

अड़ जाऊँगा जय प्रताप की
जय करता अड़ जाऊँगा।
अब स्वदेश के लिए उठा हूँ
वैरी से लड़ जाऊँगा॥

झाला मान्ना मुगलदीप का
मतवाला परवाना है।
दीपक उसे बुझा देना है,
या जलकर मर जाना है॥

टोके तो मुझ रण-यात्री को
कौन टोकनेवाला है।
भभक उठा झालामान्ना अब
कौन रोकनेवाला है।

वीर-सिपाही

अड़तालीस पंक्ति

भारत-जननी का मान किया,
बलिवेदी पर वलिदान किया।
अपना पूरा अरमान किया,
अपने को भी कुर्बान किया॥

रक्खी गर्दन तलवारों पर
थे कूद पड़े अंगारों पर,
उर ताने शर-बौछारों पर,
घाये बरछी की धारों पर॥

झनझन करते हथियारों में
अरि-नागों की फुफकारों में
जंगीगज-प्रबल क़तारों में,
घुस गये स्वर्ग के द्वारों में॥

वह जहर भरा था तीरों में,
मेवाड़-देश के धीरों में,
जिससे दुश्मन के वीरों में,
बँध सके न वे जंजीरों में॥

उनमें कुछ ऐसी आन रही,
कुछ पुश्तैनी यह बान रही।
मेवाड़-देश के लिए सदा
वीरों की सस्ती जान रही॥

चेतक

चालीस पंक्ति

चेतक करो अब चेत करो,
चेतक की टाप सुनाई दी।
भागो, भागो, भाग चलो,
भाले की नोक दिखाई दी॥

चेतक क्या. बड़वानल है वह,
उर की आग जला दी है।
विजय उसी के साथ रहेगी,
ऐसी बात चला दी है॥

दौड़ाता अपना घोड़ा अरि
जो आगे बढ़ जाता था,
उछल मौत से पहले उसके
सिर पर वह चढ़ जाता था॥

लड़ते लड़ते रख देता था
टाप कूदकर गैरों पर।
हो जाता था खड़ा कभी
अपने चंचल दो पैरों पर॥

आगे आगे बढ़ता था वह
भूल न पीछे मुड़ता था।
बाज नहीं. खगराज नहीं,
पर आसमान में उड़ता था॥

पता नहीं था संगर में फिर
पलक भाँजते धमक गया।
वार किया, संहार किया, छिप
गया अचानक चमक गया॥

लड़ता था वह वाजि लगाकर
बाजी अपने प्राणों की।
करता था परवाह नहीं वह
भाला-बर्छी-बाणों की॥

फाड़-फाड़कर कुम्भस्थल
मदमस्त गजों को मर्दन कर।
दौड़ा, सिमटा, जमा, उड़ा,
पहुँचा दुश्मन की गर्दन पर॥

चें तक अरि ने बोल दिया
चेतक के भीषण वारों से।
कभी न डरता था दुश्मन की
लहू भरी तलवारों से॥

उड़ा हवा के घोड़े पर
हो तो चेतक सा घोड़ा हो।
ले ले विजय, मौत से लड़ ले
जिसका ऐसा घोड़ा हो।

अड़तालीस पंक्ति

राणा का जयकार भरा
इसमें स्वदेश का प्यार भरा।
शान्त-जलधि में ज्वार भरा,
नीरव में हाहाकार भरा ॥

साहस - बल - उद्गार भरा,
रण-चण्डी का हुंकार भरा।
इसी भूमि के कण कण में,
अरि नागों का फुङ्कार भरा ॥

यही यही हल्दीघाटी है
उछल कलेजा काट लिया।
अपनी लोहित जीभ बढ़ाकर
रक्त हमारा चाट लिया ॥

इसी समर के भय से कितने
देवालय मसजीद हुए।
युद्धस्थल है वही जहाँ नर
मर-मर अमर शहीद हुए ॥

अब तक जिससे सिर ऊँचा है,
ऐसा ही कुछ काम किया।
बिगुल बजाकर यहीं भयंकर,
राणा ने संग्राम किया ॥

जन रक्षा के लिए यहीं
कण-कण में रक्त बहाया था।
इसी भूमि पर राणा ने
अपना सर्वस्व लुटाया था॥

चवहत्तर मन तौल दिये थे,
राना ने उपवीत यहीं।
दुश्मन से कह दिया तुम्हारी
हार हुई है जीत नहीं॥

कूद पड़े सब वीर सिपाही
इसी धधकती ज्वाला में,
यहीं देश पर मर मिटने का
देखा साहस झाला में॥

मौन-मौन गिरि कहते हिल मिल
गाथा वीर जवानों की।
एक-एक पत्थर कहता है
करुण-कथा वलिदानों की॥

तरु के पत्तों पर अंकित
राणा की अमर कहानी है।
अब तक पथ से मिटी नहीं
चेतक की चरण-निशानी है॥

"स्वतन्त्रता के लिये मरो,"
राणा ने पाठ पढ़ाया था।
इसी वेदिका पर वीरों ने
अपना शीश चढ़ाया था॥

तुम भी तो उनके वंशज हो,
काम करो, कुछ नाम करो।
स्वतन्त्रता की वलि-वेदी है,
झुककर इसे प्रणाम करो॥

रख दिया गया नज़दीक तुरत
वह ज़हरीला पी गया ज़हर ।
फिर झूम-झूम वैरी-उर से
वह लगा खेलने लहर-लहर ॥

उसका संग्राम निराला था,
यह आला था, मतवाला था ।
राणा का रक्षक भाला था
या उनका ख़ूनी भाला था

कहता था आओ आओ तुम,
मुझ भाले से भिड़ जाओ तुम ।
अपनी तलवार बढ़ाओ तुम,
भगना है तो भग जाओ तुम ॥

ठहरो, ठहरो - आता हूँ मैं,
रण-कौशल दिखलाता हूँ मैं ।
बन प्रलयंकर जाता हूँ मैं ।
शोणित से भर जाता हूँ मैं ॥

रण-विजय लिये जाता हूँ मैं,
सन्देश दिये जाता हूँ मैं ।
लोहू से तर जाता हूँ मैं,
ले मौत जिधर जाता हूँ मैं ॥

राणा की समर-कला पाकर
खिलता हूँ मुग़ल-गला पाकर ।
कहता हूँ रण में धा-धाकर
वैरी के उर में जा-जाकर ॥

कुछ कर सकता अरि-तन्त्र नहीं,
लग सकता अकबर-मन्त्र नहीं ।
परतन्त्र नहीं, परतन्त्र नहीं,
मैं रह सकता परतन्त्र नहीं ॥

प्रथम सर्ग

चार सौ चौबीस पंक्ति

सुनता हूँ ली थी अँगड़ाई
अरि के अत्याचारों से ।
सुनता हूँ वह गरज उठा था
कड़ियों की झनकारों से ।

सजी हुई है मेरी सेना,
पर सेनापति सोता है ।
उसे जगाऊँगा, बिलम्ब अब
महासमर में होता है ॥

आज उसी के चरितामृत में ।
व्यथा कहूँगा दीनों की ।
आज यहीं पर रुदन-गीति मैं
गाऊँगा बल-हीनों की ॥

आज उसी की अमर-वीरता
व्यक्त करूँगा गानों में ।
आज उसी के रण-कौशल की
कथा कहूँगा कानों में ॥

पाठक ! तुम भी सुनो कहानी
आँखों में पानी भरकर ।
होती है आरम्भ कथा अब
बोलो मंगलकर शंकर ॥

विहँस रही थी प्रकृति हटाकर
मुख से अपना घूँघट-पट ।
बालक-रवि को ले गोदी में
धीरे से बदली करवट ॥

परियों सी उतरी रवि-किरणें
घुली मिलीं रज-कन-कन से ।
खिलने लगे कमल दिनकर के
स्वर्णिम-कर के चुम्बन से ॥

मलयानिल के मृदु-झोंकों से
उठीं लहरियाँ सर-सर में।
रवि की मृदुल सुनहली किरणें
लगीं खेलने निर्झर में॥

फूलों की साँसों को लेकर
लहर उठा मारुत वन-वन।
कुसुम-पँखुरियों के आँगन में
थिरक-थिरक अलि के नर्तन॥

देखी रवि ने रूप-राशि निज
ओसों के लघु-दर्पण में।
रजत रश्मियाँ फैल गईं
गिरि-अरावली के कण-कण में॥

इसी समय मेवाड़-देश की
कटारियाँ खनखना उठीं।
नागिन सी डस देने वाली
तलवारें झनझना उठीं॥

धारण कर केशरिया बाना
हाथों में ले ले भाले,
वीर महाराणा से ले खिल
उठे बाल भोले भाले॥

विजयादशमी का वासर था,
उत्सव के बाजे बाजे।
चले वीर आखेट खेलने
उछल पड़े ताजे-ताजे॥

राणा भी आखेट खेलने
शक्तसिंह के साथ चला।
पीछे चारण, वंश-पुरोहित
भाला उसके हाथ चला॥

भुजा फड़कने लगी वीर की
अशकुन जतलानेवाली ।
गिरी तुरत तलवार हाथ से
पावक बरसाने वाली ॥

बतलाता था यही अमंगल
बन्धु-बन्धु का रण होगा ।
यही भयावह रण ब्राह्मण की
हत्या का कारण होगा ॥

अशकुन की परवाह न की,
वह आज न रुकनेवाला था ।
अहो, हमारी स्वतन्त्रता का
झण्डा झुकनेवाला था ॥

घोर विपिन में पहुँच गये
कातरता के बन्धन तोड़े ।
हिंसक जीवों के पीछे
अपने अपने घोड़े छोड़े ॥

भीषण वार हुए जीवों पर
तरह-तरह के शोर हुए ।
मारो ललकारो के रव
जंगल में चारों ओर हुए ॥

चीता यह, वह बाघ, शेर वह,
शोर हुआ आखेट करो ।
छेको, छेको हृदय-रक्त ले
निज बरछे को भेंट करो ॥

लगा निशाना ठीक हृदय में
रक्त-पगा जाता है वह ।
चीते को जीते-जी पकड़ो
रीछ भगा जाता है वह ॥

उड़े पखेरू, भाग गये मृग
भय से शशक सियार भगे।
क्षण भर थमकर भगे मत्त गज
हरिण हार के हार भगे॥

नरम-हृदय कोमल मृग-छौने
डौक रहे थे इधर-उधर।
एक प्रलय का रूप खड़ा था
मेवाड़ी-दल गया जिधर॥

किसी कन्दरा से निकला हय,
झाड़ी में फँस गया कहीं।
दौड़ रहा था, दौड़ रहा था,
दल-दल में धँस गया कहीं॥

लचकीली तलवार कहीं पर
उलझ-उलझ मुड़ जाती थी।
टाप गिरी, गिरि-कठिन-शिला पर
चिनगारी उड़ जाती थी॥

हय के हिन-हिन हुङ्कारों से,
भीषण-धनु-टंकारों से,
कोलाहल मच गया भयंकर
मेवाड़ी-ललकारों से॥

एक केसरी सोता था वन के
गिरि-गह्वर के अन्दर।
रोओं की दुर्गन्ध हवा से
फैल रही थी इधर उधर॥

सिर के केसर हिल उठते
जब हवा झुरुकती थी झुर-झुर;
फैली थीं टाँगें अवनी पर
नासा बजती थी घुरघुर॥

निःश्वासों के साथ लार थी
गलफर से चूती तर-तर।
ख़ून सने तीखे दाँतों से
मौत काँपती थी थर-थर॥

अन्धकार की चादर ओढ़े
निर्भय सोता था नाहर।
मेवाड़ी-जन-मृगया से
कोलाहल होता था बाहर॥

कलकल से जग गया केसरी
अलसाई आँखें खोलीं।
झुँझलाया कुछ गुर्राया
जब सुनी शिकारी की बोली॥

पर गुर्राता पुनः सो गया
नाहर वह आज़ादी से।
तनिक न की परवाह किसी की
रंचक डरा न वादी से॥

पर कोलाहल पर कोलाहल,
किलकारों पर किलकारें।
उसके कानों में पड़ती थीं
ललकारों पर ललकारें॥

सो न सका उठ गया क्रोध से
अँगड़ाकर तन झाड़ दिया।
हिलस उठा गिर-गह्वर जब
नीचे मुख कर चिग्घाड़ दिया॥

शिला-शिला फट उठी; हिले तरु,
टूटे व्योम वितान गिरे।
सिंह-नाद सुनकर भय से जन
चित्त-पट्ट-उत्तान गिरे।

धीरे-धीरे चला केसरी
आँखों में अंगार लिये।
लगे घेरने राजपूत
भाला-बरछी-तलवार लिये॥

वीर-केसरी रुका नहीं
उन क्षत्रिय-राजकुमारों से।
डरा न उनकी बिजली-सी
गिरने वाली तलवारों से॥

छका दिया कितने जन को
कितनों को लड़ना सिखा दिया।
हमने भी अपनी माता का
दूध पिया है दिखा दिया॥

चेत करो तुम राजपूत हो
राजपूत अब ठीक बनो।
मौन-मौन कह दिया सभी से
हम सा तुम निर्भीक बनो॥

हम भी सिंह, सिंह तुम भी हो,
पाला भी है आन पड़ा।
आओ हम तुम आज देख लें
हम दोनों में कौन बड़ा॥

घोड़ों की घुड़दौड़ रुकी
लोगों ने बंद शिकार किया।
शक्तसिंह ने हिम्मत कर बरछे
से उस पर वार किया॥

आह न की बिगड़ी न बात
चण्डी के भीषण वाहन की।
कठिन तड़ित सा तड़प उठा
कुछ भाले की परवाह न की॥

काल-सदृश राणा प्रताप झट
तीखा शूल निराला ले,
बढ़ा सिंह की ओर झपटकर
अपना भीषण-भाला ले ॥

ठहरो-ठहरो कहा सिंह को,
लक्ष्य बनाकर ललकारा ।
शक्तसिंह, तुम हटो सिंह को
मैंने अब मारा, मारा ॥

राजपूत अपमान न सहते,
परम्परा की बान यही ।
हटो कहा राणा ने पर
उसकी छाती उत्तान रही ॥

आगे बढ़कर कहा लक्ष्य को
मार नहीं सकते हो तुम ।
बोल उठा राणा प्रताप ललकार
नहीं सकते हो तुम ॥

शक्तसिंह ने कहा बने हो
शूल चलानेवाले तुम ।
पड़े नहीं हो शक्तसिंह सम
किसी वीर के पाले तुम ॥

क्यों कहते हो हटो, हटो,
हूँ वीर नहीं रणधीर नहीं ?
क्या सीखा है कहीं चलाना
भाला - बरछी - तीर नहीं ?

बोला राणा क्या बकते हो,
मैंने तो कुछ कहा नहीं ।
शक्तसिंह, बखरे का यह
आखेट, तुम्हारा रहा नहीं ॥

राजपूत-कुल के कलंक,
धिक्कार तुम्हारी वाणी पर,
बिना हेतु के झगड़ पड़े जो
वज्र गिरे उस प्राणी पर ॥

राणा का सत्कार यही क्या,
बन्धु-हृदय का प्यार यही ?
क्या भाई के साथ तुम्हारा
है उत्तम व्यवहार यही ?

अब तक का अपराध क्षमा,
आगे को काल निकाला यह ।
तेरा काम तमाम करेगा
मेरा भीषण भाला यह ॥

बात काटकर राणा की वह
शक्तसिंह फिर बोल उठा ।
डोल उठा मेवाड़ देश
इस बार हलाहल घोल उठा ॥

धार देखने को जिसने
तलवार चला दी उँगली पर ।
उस अवसर पर शक्तसिंह वह
खेल गया अपने जी पर ॥

बार-बार कहते हो तुम क्या
अहंकार है भाले का !
ध्यान नहीं है क्या कुछ भी
मुझ भीषण-रण-मतवाले का ?

राजपूत हूँ मुझे चाहिए
ऐसी कभी सलाह नहीं ।
तुष्ट रहो या रुष्ट रहो,
मुझको इसकी परवाह नहीं ॥

रुक सकता है ऐ प्रताप,
मेरे उर का उद्गार नहीं।
बिना युद्ध के अब कदापि
है किसी तरह उद्धार नहीं॥

मुख-सम्मुख ठहरा हूँ मैं,
रण-सागर में लहरा हूँ मैं।
हो न युद्ध इस नम्र विनय पर
आज बना बहरा हूँ मैं॥

विष बखेर कर वैर किया
राणा से ही क्या, लाखों से।
लगी बरसने चिनगारी
राणा की लोहित आँखों से॥

क्रोध बढ़ा, आवेश बढ़ा,
अब वार न रुकने वाला है।
कहीं नहीं पर यहीं हमारा
मस्तक झुकने वाला है॥

तनकर राणा शक्तसिंह से
बोला—ठहरो ठहरो तुम।
ऐ मेरे भीषण भाला,
भाई पर लहरो लहरो तुम॥

पीने का है यही समय इच्छा
भर शोणित पी लो तुम।
बढ़ो बढ़ो अब वक्षस्थल में
घुसकर विजय अभी लो तुम॥

शक्तसिंह. आखेट तुम्हारा
करने को तैयार हुआ।
लो कर में करवाल बचो अब
मेरा तुम पर वार हुआ॥

खड़े रहो भाले ने तन को
लून किया अब लून किया।
खेद, महाराणा प्रताप ने,
आज तुम्हारा ख़ून किया॥

देख भभकती आग क्रोध की
शक्तसिंह भी क्रुद्ध हुआ।
हा, कलंक की वेदी पर फिर
उन दोनों का युद्ध हुआ॥

कूद पड़े वे अहंकार से
भीषण-रण की ज्वाला में।
रण-चण्डी भी उठी रक्त
पीने को भरकर प्याला में॥

होने लगे वार हरके से
एकलिङ्ग प्रतिकूल हुए।
मौत बुलानेवाले उनके
तीक्ष्ण अग्रसर शूल हुए॥

क्षण-क्षण लगे पैतरा देने
बिगड़ गया रुख भालों का।
रक्षक कौन बनेगा अब इन
दोनों रण-मतवालों का॥

दोनों का यह हाल देख
वन-देवी थी उर फाड़ रही।
भाई-भाई के विरोध से
काँप उठी मेवाड़-मही॥

लोग दूर से देख रहे थे
भय से उनके वारों को।
किन्तु रोकने की न पड़ी
हिम्मत उन राजकुमारों को॥

दोनों की आँखों पर परदे
पड़े मोह के काले थे।
राज-वंश के अभी-अभी
दो दीपक बुझनेवाले थे॥

तब तक नारायण ने देखा
लड़ते भाई भाई को।
रुको, रुको कहता दौड़ा कुछ
सोचो मान-बड़ाई को॥

कहा, डपटकर रुक जाओ,
यह शिशोदिया-कुल-धर्म नहीं।
भाई से भाई का रण यह
कर्मवीर का कर्म नहीं॥

राजपूत-कुल के कलंक,
अब लज्जा से तुम झुक जाओ।
शक्तसिंह, तुम रुको रुको,
राणा प्रताप, तुम रुक जाओ॥

चतुर पुरोहित की बातों की
दोनों ने परवाह न की।
अहो, पुरोहित ने भी निज
प्राणों की रंचक चाह न की॥

उठा लिया विकराल छुरा
सीने में मारा ब्राह्मण ने।
उन दोनों के बीच बहा दी
शोणित-धारा ब्राह्मण ने॥

वन का तन रँग दिया रुधिर से
दिखा दिया, है त्याग यही।
निज स्वामी के प्राणों की
रक्षा का है अनुराग यही॥

ब्राह्मण था वह ब्राह्मण था,
हित राजवंश का सदा किया।
निज स्वामी का नमक हृदय का
रक्त बहाकर अदा किया॥

जीवन-चपला चमक दमक कर
अन्तरिक्ष में लीन हुई।
अहो, पुरोहित की अनन्त में
जाकर ज्योति विलीन हुई॥

सुनकर ब्राह्मण की हत्या
उत्साह सभी ने मन्द किया।
हाहाकार मचा सबने आखेट
खेलना बन्द किया॥

ख़ून हो गया ख़ून हो गया
का जङ्गल में शोर हुआ।
धन्य धन्य है धन्य पुरोहित—
यह रव चारों ओर हुआ॥

युगल बन्धु के दृग अपने को
लज्जा-पट से ढाँप उठे।
रक्त देखकर ब्राह्मण का
सहसा वे दोनों काँप उठे॥

धर्म-भीरु राणा का तन तो
भय से कम्पित और हुआ।
लगा सोचने अहो कलंकित
वीर-देश चित्तौर हुआ॥

बोल उठा राणा प्रताप—
मेवाड़-देश को छोड़ो तुम।
शक्तसिंह, तुम हटो हटो,
मुझसे अब नाता तोड़ो तुम॥

शिशोदिया-कुल के कलंक,
हा, जन्म तुम्हारा व्यर्थ हुआ ।
हाय, तुम्हारे ही कारण यह
पातक, महा अनर्थ हुआ ॥

सुनते ही यह मौन हो गया,
घूँट घूँट विष-पान किया ।
आज्ञा मानी, यही सोचता
दिल्ली को प्रस्थान किया ॥

हाय, निकाला गया आज दिन
मेरा बुरा ज़माना है ।
भूख लगी है प्यास लगी
पानी का नहीं ठिकाना है ॥

मैं सपूत हूँ राजपूत,
मुझको ही ज़रा यक़ीन नहीं ।
एक जगह सुख से बैठूँ, दो
अंगुल मुझे ज़मीन नहीं ।

अकबर से मिल जाने पर हा,
रजपूती की शान कहाँ ।
जन्मभूमि पर रह जायेगा
हा, अब नाम-निशान कहाँ ॥

यह भी मन में सोच रहा था,
इसका बदला लूँगा मैं ।
क्रोध-हुताशन में आहुति
मेवाड़-देश की दूँगा मैं ॥

शिशोदिया में जन्म लिया यद्यपि
यह है कर्त्तव्य नहीं ।
पर प्रताप-अपराध कभी
क्षन्तव्य नहीं, क्षन्तव्य नहीं ॥

शक्तसिंह पहुँचा अकबर भी
धाकर मिला कलेजे से ।
लगा छेदने राणा का उर
कूटनीति के नेजे से ॥

युगल-बन्धु-रण देख क्रोध से
लाल हो गया था सूरज ।
मानो उसे मनाने को अम्बर पर
चढ़ती थी भू-रज ॥

किया सुनहला काम प्रकृति ने,
मकड़ी के मृदु तारों पर ।
झलक रही थी अन्तिम किरणें
राजपूत - तलवारों पर ॥

धीरे धीरे रंग जमा तम का
सूरज की लाली पर ।
कौवों की बैठी पंचायत
तरु की डाली डाली पर ॥

चूम लिया शशि ने झुककर
कोई के कोमल गालों को ।
देने लगा रजत हँस हँसकर,
सागर-सरिता-नालों को ॥

हिंस्र जन्तु निकले गह्वर से
घेर लिया गिरि झीलों को ।
इधर मलिन महलों में आया
लाश सौंपकर भीलों को ।

वंश-पुरोहित का प्रताप ने
दाह कर्म करवा डाला ।
देकर धन ब्राह्मण-कुल के
खाली घर को भरवा डाला ॥

जहाँ लाश थी ब्राह्मण की
जिस जगह त्याग दिखलाया था ।
चबूतरा बन गया जहाँ
प्राणों का पुष्प चढ़ाया था ॥

गया बन्धु, पर गया न गौरव,
अपनी कुल-परिपाटी का ।
यह विरोध भी कारण है
भीषण-रण हल्दीघाटी का ॥

मेवाड़, तुम्हारी आगे
अब हा, कैसी गति होगी ।
हा, अब तेरी उन्नति में
क्या पग पग पर यति होगी ?

द्वितीय सर्ग

एक सौ बारह पंक्ति

हिलमिल कर उन्मत्त प्रेम के
लेन-देन का मृदु-व्यापार।
ज्ञात न किसको था अकबर की
छिपी नीति का अत्याचार ॥

अहो, हमारी माँ-बहनों से
सजता था मीनाबाज़ार।
फैल गया था अकबर का वह
कितना पीड़ामय व्यभिचार ॥

अवसर पाकर कभी विनय-नत,
कभी समद तन जाता था।
नरम कभी जल सा, पावक सा
कभी गरम बन जाता था ॥

मानसिंह की फूफी से
अकबर ने कर ली थी शादी।
अहो, तभी से भाग रही है
कोसों हमसे आज़ादी ॥

हो उठता था विकल देखकर
मधुर कपोलों की लाली।
पीता था अलि-सा कलियों
के अधरों की मधुमय प्याली ॥

करता था वह किसी जाति की
कान्त कामिनी से ठनगन ।
कामातुर वह कर लेता था
किसी सुन्दरी का चुम्बन ॥

× × ×

था एक समय कुसुमाकर का
लेकर उपवन में बाल हिरन ।
वन-छटा देख कुछ उससे ही
गुनगुना रही थी बैठ किरन ॥

वह राका-शशि की ज्योत्स्ना सी
वह नव वसन्त की सुखमा सी
बैठी बखेरती थी शोभा
छवि देख धन्य थे वन-वासी ॥

आँखों में मद की लाली थी,
गालों पर छाई अरुणाई ।
कोमल अधरों की शोभा थी
विद्रुम-कलिका सी खिल आई ॥

तन-कान्ति-देखने को अपलक
थे खुले कुसुम-कुल-नयन बन्द ।
उसकी साँसों की सुरभि पवन
लेकर बहता था मन्द-मन्द ॥

पट में तन, तन में नव यौवन
नव यौवन में छवि-माला थी ।
छवि-माला के भीतर जलती
पावन-सतीत्व की ज्वाला थी ॥

थी एक जगह जग की शोभा
कोई न देह में अलंकार ।
केवल कटि में थी बँधी एक
शोणित-प्यासी तीखी कटार ॥

हाथों से सुहला सुहलाकर
नव बाल हिरन का कोमल-तन
विस्मित सी उससे पूछ रही
वह देख देख वन-परिवर्तन ॥

× × ×

"कोमल कुसुमों में मुस्काता
छिपकर आनेवाला कौन ?
बिछी हुई पलकों के पथ पर
छवि दिखलानेवाला कौन ?

बिना बनाये बन जाते वन
उन्हें बनानेवाला कौन ?
कीचक के छिद्रों में बसकर
बीन बजाने वाला कौन ?

कल-कल कोमल कुसुम-कुञ्ज पर
मधु बरसाने वाला कौन ?
मेरी दुनिया में आता है
है वह आने वाला कौन ?

छुमछुम छननन रास मचाकर
बना रहा मतवाला कौन ?
मुसकाती जिससे कलिका है
है वह क़िस्मत वाला कौन ?

बना रहा है मत्त पिलाकर
मंजुल मधु का प्याला कौन
फैल रही जिसकी महिमा है
है वह महिमावाला कौन ?

मेरे बहु विकसित उपवन का
विभव बढ़ानेवाला कौन ?
विपट-निचय के मृत पदों पर
पुष्प चढ़ाने वाला कौन ?

फैलाकर माया मधुकर को
मुग्ध बनाने वाला कौन ?
छिपे छिपे मेरे आँगन में
हँसता आनेवाला कौन ?

महक रहा है मलयानिल क्यों ?
होती है क्यों कैसी कूक ?
बौरे-बौरे आमों का है,
भाव और भाषा क्यों मूक ॥"

× × ×

वह इसी तरह थी प्रकृति-मग्न,
तब तक आया अकबर अधीर ।
धीरे से बोला युवती से
वह कामातुर कम्पित-शरीर—

"प्रेयसि ! गालों की लाली में
मधु-भार भरा, मृदु प्यार भरा ।
रानी, तेरी चल चितवन में
मेरे उर का संसार भरा ॥

मेरे इन प्यासे अधरों को
तू एक मधुर चुम्बन दे दे ।
धीरे से मेरा मन लेकर
धीरे से अपना मन दे दे ॥"

यह कहकर अकबर बढ़ा सभय
उस सती सिंहनी के आगे ।
जागें उसके कुल के गौरव
पावन-सतीत्व उर के जागे ॥

× × ×

शिशोदिया-कुल-कन्या थी
वह सती रही पाञ्चाली सी ।
क्षत्राणी थी चढ़ बैठी
उसकी छाती पर काली सी ।

तृतीय सर्ग

अट्ठासी पंक्ति

सहृदय प्रतिद्वन्द्वी अकबर

अखिल हिन्द का था सुल्तान,
मुगल-राज-कुल का अभिमान।
बढ़ा-चढ़ा था गौरव-मान,
उसका कहीं न था उपमान॥

सबसे अधिक राज विस्तार,
धन का रहा न पारावार।
राज-द्वार पर जय जयकार,
भय से डगमग था संसार॥

नभ-चुम्बी विस्तृत अभिराम,
धवल मनोहर चित्रित-धाम।
भीतर नव उपवन आराम,
बजते थे बाजे अविराम॥

संगर की सरिता कर पार
कहीं दमकते थे हथियार।
शोणित की प्यासी खरधार,
कहीं चमकती थी तलवार॥

स्वर्णिम धर में शीत प्रकाश
जलते थे मणियों के दीप।
धोते आँसू-जल से चरण
देश-देश के सकल महीप॥

तो भी कहता था सुल्तान—
पूरा कब होगा अरमान।
कब मेवाड़ मिलेगा आन,
राणा का होगा अपमान॥

देख देख भीषण षड्यन्त्र,
सबने मान लिया है मन्त्र।
पर वह कैसा वीर स्वतन्त्र,
रह सकता न क्षणिक परतन्त्र॥

कैसा है जलता अंगार,
कैसा उसका रण-हुङ्कार।
कैसी है उसकी तलवार,
अभय मचाती हाहाकार॥

कितना चमक रहा है भाल,
कितनी तनु कटि, वक्ष विशाल।
उससे जननी-अंक निहाल,
धन्य धन्य माई का लाल॥

कैसी है उसकी ललकार
कैसी है उसकी किलकार।
कैसी चेतक-गति अविकार,
कैसी असि कितनी खरधार॥

कितने जन कितने सरदार,
कैसा लगता है दरबार।
उसपर क्यों इतने बलिहार
उस पर जन-रक्षा का भार॥

किसका वह जलता अभिशाप,
जिसका इतना भैरव-ताप।
कितना उसमें भरा प्रताप,
अरे! अरे! साकार प्रताप॥

कैसा भाला कैसी म्यान,
कितना नत कितना उत्तान।
पतन नहीं दिन-दिन उत्थान,
कितना आज़ादी का ध्यान॥

कैसा गोरा-काला रंग,
जिससे सूरज शशि बदरंग।
जिससे वीर सिपाही तंग,
जिससे मुगल राज है दंग॥

कैसी ओज-भरी है देह,
कैसा आँगन कैसा गेह।
कितना मातृ-चरण पर नेह,
उसको छू न गया संदेह॥

कैसी है मेवाड़ी-आन,
कैसी है रजपूती शान।
जिसपर इतना है कुर्बान,
जिस पर रोम-रोम बलिदान॥

'एक बार भी मान-समान,
मुकुट नवा करता सम्मान।
पूरा हो जाता अरमान,
मेरा रह जाता अभिमान॥

यही सोचते दिन से रात,
और रात से कभी प्रभात।
होता जाता दुर्बल गात,
यद्यपि सुख था वैभव-जात॥

कुछ दिन तक कुछ सोच विचार,
करने लगा सिंह पर वार।
छिपी छुरी का अत्याचार,
रुधिर चूसने का व्यापार॥

करता था जन पर आघात,
उनसे मीठी मीठी बात।
बढ़ता जाता था दिन-रात,
वीर-शत्रु का यह उत्पात॥

इधर देखकर अत्याचार,
सुनकर जन की करुण-पुकार,
रोक शत्रु के भीषण-वार,
चेतक पर हो सिंह सवार,

कह उठता था बारंबार,
हाथों में लेकर तलवार—
वीरो, हो जाओ तैयार,
करना है माँ का उद्धार॥

चतुर्थ सर्ग

अट्ठासी पंक्ति

काँटों पर मृदु कोमल फूल,
पावक की ज्वाला पर तूल।
सुई-नोक पर पथ की धूल,
बनकर रहता था अनुकूल॥

बाहर से करता सम्मान,
वह जजिया-कर लेता था न।
कूटनीति का तना वितान,
उसके नीचे हिन्दुस्तान॥

अकबर कहता था हर बार,
हिन्दू मजहब पर बलिहार।
मेरा हिन्दू से सत्कार;
मुझसे हिन्दू का उपकार॥

यही मौलवी से भी बात,
कहता उत्तम है इस्लाम।
करता इसका सदा प्रचार,
मेरा यह निशि-दिन का काम॥

उसकी यही निराली चाल,
मुसलमान हिन्दू सब काल।
उस पर रहते सदा प्रसन्न,
कहते उसे सरल महिपाल॥

कभी तिलक से शोभित भाल,
साफा कभी शीश पर ताज।
मस्जिद में जाकर सविनोद,
पढ़ता था वह कभी नमाज॥

एक बार की सभा विशाल,
जान सुदिन, शुभ-ग्रह, शुभ-योग।
करने आये धर्म-विचार,
दूर दूर से ज्ञानी लोग॥

तना गगन पर एक वितान,
नीचे बैठी सुधी-जमात।
ललित-झाड़ की जगमग ज्योति,
जलती रहती थी दिन-रात॥

एक ओर पण्डित-समुदाय,
एक ओर बैठे सरदार।
एक ओर बैठा भूपाल,
मणि-चौकी पर आसन मार॥

पण्डित-जन के शास्त्र-विचार,
सुनता सदा लगाकर ध्यान।
हिला हिलाकर शिर सविनोद,
मन्द मन्द करता मुसकान॥

कभी मौलवी की भी बात
सुनकर होता मुदित महान्।
मोह-मग्न हो जाता भूप
कभी धर्म-मय सुनकर गान॥

पाकर मानव सहानुभूति,
अपने को जाता है भूल।
वशीभूत होकर सब काम,
करता है अपने प्रतिकूल।

माया-वलित सभा के बीच,
यही हो गया सबका हाल।
जादू का पड़ गया प्रभाव,
सबकी मति बदली तत्काल ॥

एक दिवस सुन सबकी बात,
उन पर करके क्षणिक विचार।
बोल उठा होकर गम्भीर,
सब धर्मों से जन-उद्धार ॥

पर मुझसे भी करके क्लेश,
सुनिए ईश्वर का सन्देश।
मालिक का पावन आदेश,
उस उपदेशक का उपदेश ॥

प्रभु का संसृति पर अधिकार,
उसका मैं धावन अविकार ॥
यह भव-सागर कठिन अपार,
दीन-इलाही से उद्धार ॥

इसका करता जो विश्वास,
उसको तनिक न जग का त्रास।
उसकी बुझ जाती है प्यास,
उसके जन्म-मरण का नाश ॥

इससे बढ़ा सुयश-विस्तार,
दीन-इलाही का सत्कार।
बुध जन को तज राज-विचार,
सबने किया समय स्वीकार ॥

हिन्दू-जनता ने अभिमान,
छोड़ा रामायण का गान।
दीन-इलाही पर कुर्बान,
मुसलमान से अलग कुरान ॥

तनिक न ब्राह्मण-कुल उत्थान,
रही न क्षत्रियपन की आन।
गया वैश्य-कुल का सम्मान,
शूद्र जाति का नाम-निशान॥

राणा प्रताप से अकबर से,
इस कारण वैर-विरोध बढ़ा।
करते छल-छद्म परस्पर थे,
दिन-दिन दोनों का क्रोध बढ़ा॥

कूटनीति सुनकर अकबर की,
राणा जो गिनगिना उठा।
रण करने के लिए शत्रु से,
चेतक भी हिनहिना उठा॥

पंचम सर्ग

तीन सौ अट्ठाइस पंक्ति

हय-गज-दल पैदल रथ ले लो
मुगल-प्रताप बढ़ा दो।
राणा से मिलकर उसको भी
अपना पाठ पढ़ा दो॥

ऐसा कोई यत्न करो बन्धन
में कस लेने को।
वही एक विषधर बैठा है
मुझको डस लेने को॥"

मानसिंह ने कहा—"आपका
हुकुम सदा सिर पर है।
बिना सफलता के न मान यह
आ सकता फिरकर है॥"

यह कहकर उठ गया गर्व से
झुककर मान जताया।
सेना ले कोलाहल करता
शोलापुर चढ़ आया॥

युद्ध ठानकर मानसिंह ने
जीत लिया शोलापुर।
भरा विजय के अहंकार से
उस अभिमानी का उर॥

किसे मौत दूँ किसे जिला दूँ
किसका राज हिला दूँ।
लगा सोचने किसे मींजकर
रज में आज मिला दूँ॥

किसे हँसा दूँ बिजली-सा मैं
घन-सा किसे रुला दूँ।
कौन विरोधी है मेरा
फाँसी पर जिसे झुला दूँ॥

बनकर भिक्षुक दीन जन्म भर
किसे झेलना दुख है।
रण करने की इच्छा से
जो आ सकता सम्मुख है॥

कहते ही यह ठिठक गया
फिर धीमे स्वर से बोला।
शोलापुर के विजय-गर्व पर
गरा अचानक गोला॥

अहो अभी तो वीर-भूमि—
मेवाड़-केसरी खूनी।
गरज रहा है निर्भय मुझसे
लेकर ताकत दूनी॥

स्वतन्त्रता का वीर पुजारी
संगर-मतवाला है।
शत-शत असि के सम्मुख
उसका महाकाल भाला है॥

धन्य-धन्य है राजपूत वह
उसका सिर न झुका है।
अब तक कोई अगर रुका तो
केवल वही रुका है॥

निज प्रताप-बल से प्रताप ने
अपनी ज्योति जगा दी।
हमने तो जो बुझ न सके,
कुछ ऐसी आग लगा दी॥

अहो जाति को तिलाञ्जली दे
हुए भार हम भू के।
कहते ही यह ढुलक गये
दो-चार बूँद आँसू के॥

किन्तु देर तक टिक न सका
अभिमान जाति का उर में।
क्या विहँसेगा विटप, लगा है
यदि कलंक अंकुर में॥

एक घड़ी तक मौन पुनः
कह उठा मान गरबीला।
देख काल भी डर सकता
मेरी भीषण-रण-लीला॥

वसुधा का कोना धरकर
चाहूँ तो विश्व हिला दूँ।
गगन-मही का क्षितिज पकड़
चाहूँ तो अभी मिला दूँ॥

राणा की क्या शक्ति उसे भी
रण की कला सिखा दूँ।
मृत्यु लड़े तो उसको भी
अपने दो हाथ दिखा दूँ॥

पथ में ही मेवाड़ पड़ेगा
चलकर निश्चय कर लूँ।
मान रहा तो कुशल, नहीं तो
संगर से जी भर लूँ॥

युद्ध महाराणा प्रताप से
मेरा मचा रहेगा।
मेरे जीते-जी कलंक से
क्या वह बचा रहेगा?

मानी मान चला, सोचा
परिणाम न कुछ जाने का।
पास महाराणा के भेजा
समाचार आने का॥

मानसिंह के आने का
सन्देश उदयपुर आया।
राणा ने भी अमरसिंह को
अपने पास बुलाया॥

कहा—"पुत्र! मिलने आता है
मानसिंह अभिमानी।
छल है, तो भी मान करो
लेकर लोटा भर पानी॥

किसी बात की कमी न हो
रह जाये आन हमारी।
पुत्र! मान के स्वागत की
तुम ऐसी करो तयारी"॥

मान लिया आदेश, स्वर्ण से
सजे गये दरवाजे।
मान मान के लिये मधुर
बाजे मधु-रव से बाजे।

जगह जगह पर सजे गये
फाटक सुन्दर सोने के।
वन्दनवारों से हँसते थे
घर कोने कोने के॥

जगमग जगमग ज्योति उठी जल,
व्याकुल दरबारी-जन,
नव गुलाब-वासित पानी से
किया गया पथ सिंचन॥

शीतल-जल-पूरित कंचन के
कलसे थे द्वारों पर।
चम-चम पानी चमक रहा था
तीखी तलवारों पर॥

उदयसिंधु के नीचे भी
बाहर की शोभा छाई।
हृदय खोलकर उसने भी
अपनी श्रद्धा दिखलाई॥

किया अमर ने धूमधाम से
मानसिंह का स्वागत।
मधुर-मधुर सुरभित गजरों के
बोझे से वह था नत।

कहा देखकर अमरसिंह का
विकल प्रेम अपने में।
होगा यह सम्मान मुझे
विश्वास न था सपने में॥

शत-शत तुमको धन्यवाद है,
सुखी रहो जीवन भर।
झरें शीश पर सुमन सुयश के
अम्बर-तल से झर-झर॥

धन्यवाद स्वीकार किया,
कर जोड़ पुनः वह बोला।
भावी भीषण-रण का
दरवाजा धीरे से खोला

"समय हो गया भूख लगी है
चलकर भोजन कर लें।
थके हुए हैं ये मृदु पद
जल से इनको तर कर लें"॥

सुनकर विनय उठा केवल रख
पट रेशम का तन पर।
धोकर पद भोजन करने को
बैठ गया आसन पर॥

देखे मधु पदार्थ पन्ने की
मृदु प्याली प्याली में।
चावल के सामान मनोहर
सोने की थाली में॥

घी से सनी सजी रोटी थी,
रत्नों के बरतन में।
शाक खीर नमकीन मधुर,
चटनी चमचम कंचन में॥

मोती झालर से रक्षित,
रसदार लाल थाली में।
एक ओर मीठे फल थे,
मणि-तारों की डाली में॥

तरह-तरह के खाद्य-कलित,
चाँदी के नये कटोरे
भरे खराये घी से देखे,
नीलम के नव खोरे॥

पर न वहाँ भी राणा था
बस ताड़ गया वह मानी।
रहा गया जब उसे न तब वह
बोल उठा अभिमानी॥

"अमरसिंह भोजन का तो
सामान सभी सम्मुख है।
पर प्रताप का पता नहीं है
एक यही अब दुख है॥

मान करो पर मानसिंह का
मान अधूरा होगा।
बिना महाराणा के यह
आतिथ्य न पूरा होगा॥

जब तक भोजन वह न करेंगे
एक साथ आसन पर।
तब तक कभी न हो सकता है
मानसिंह का आदर ॥

अमरसिंह, इसलिए उठो तुम
जाओ मिलो पिता से
मेरा यह सन्देश कहो
मेवाड़-गगन-सविता से ॥

बिना आपके वह न ठहर पर
ठहर सकेंगे क्षण भी।
छू सकते हैं नहीं हाथ से,
चावल का लघु कण भी ॥"

अहो, विपति में देश पड़ेगा
इसी भयानक तिथि से।
गया लौटकर अमरसिंह फिर
आया कहा अतिथि से ॥

"मै सेवा के लिए आपकी
तन-मन-धन से आकुल।
प्रभो, करें भोजन, वह हैं
सिर की पीड़ा से व्याकुल ॥"

पथ प्रताप का देख रहा था,
प्रेम न था रोटी में।
सुनते ही वह काँप गया,
लग गई आग चोटी में ॥

घोर अवज्ञा से ज्वाला सी,
लगी दहकने त्रिकुटी।
अधिक क्रोध से वक्र हो गई,
मानसिंह की भृकुटी ॥

महाराज़ भानसिह

चावल-कण दो-एक बाँधकर
गरज उठा बादल सा ।
मानो भीषण क्रोध-वह्नि से,
गया अचानक जल सा ॥

"कुशल नहीं, राणा प्रताप का
मस्तक की पीड़ा से ।
थहर उठेगा अब भूतल
रण-चण्डी की क्रीणा से ॥

जिस प्रताप की स्वतन्त्रता के
गौरव की रक्षा की ।
खेद यही है वही मान का
कुछ रख सका न बाकी ॥

बिना हेतु के होगा ही वह
जो कुछ बदा रहेगा ।
किन्तु महाराणा प्रताप अब
रोता सदा रहेगा ॥

मान रहेगा तभी मान का
हाला घोल उठे जब ।
डग-डग-डग ब्रह्माण्ड चराचर
भय से डोल उठे जब" ॥

चकाचौंध सी लगी मान को
राणा की मुख-भा से ।
अहंकार की बातें सुन
जब निकला सिंह गुफा से

दक्षिण-पद-कर आगे कर
तर्जनी उठाकर बोला ।
गिरने लगा मान-छाती पर
गरज-गरज कर गोला ॥

वज्र-नाद सा तड़प उठा
हलचल थी मरदानों में।
पहुँच गया राणा का वह रव
अकबर के कानों में॥

"अरे तुर्क, बकवाद करो मत
खाना हो तो खाओ।
या बघना का ही शीतल-जल
पीना हो तो जाओ॥

जो रण को ललकार रहे हो
तो आकर लड़ लेना।
चढ़ आना यदि चाह रहे
चित्तौड़ वीर-गढ़ लेना॥

कहाँ रहे जब स्वतन्त्रता का
मेरा बिगुल बजा था।
जाति धर्म के मुझ रक्षक को
तुमने क्या समझा था॥

अभी कहूँ क्या, प्रश्नों का
रण में क्या उत्तर दूँगा।
महामृत्यु के साथ-साथ
जब इधर-उधर लहरूँगा॥

भभक उठेगी जब प्रताप के
प्रखर तेज की आगी।
तब क्या हूँ बतला दूँगा
ऐ अम्बर कुल के त्यागी"॥

अभी मान से राणा से था
वाद-विवाद लगा ही।
तब तक आगे बढ़कर बोला
कोई वीर सिपाही॥

ऐ प्रताप, तुम सिहर उठो
साँपिन सी करवालों से।
ऐ प्रताप, तुम भभर उठो
तीखे-तीखे भालों से॥

गिनो मृत्यु के दिन' कहकर
घोड़े को सरपट छोड़ा।
पहुँच गया दिल्ली उड़ता वह
वायु-वेग से घोड़ा॥

इधर महाराणा प्रताप ने
सारा घर खुदवाया।
धर्म-भीरु ने बार-बार
गंगा-जल से धुलवाया॥

उतर गया पानी, प्यासा था,
तो भी पिया न पानी।
उदय-सिन्धु था निकट डर गया
अपना दिया न पानी॥

राणा द्वारा मानसिंह का
यह जो मान हरण था।
हल्दीघाटी के होने का
यही मुख्य कारण था॥

लगी सुलगने आग समर की
भीषण-आग लगेगी।
प्यासी है, अब वीर-रक्त से
माँ की प्यास बुझेगी॥

स्वतन्त्रता का कवच पहन
विश्वास जमाकर भाला में।
कूद पड़ा राणा प्रताप उस
समर-वह्नि की ज्वाला में॥

षष्ठ सर्ग

एक सौ बावन पंक्ति

नीलम मणि के वन्दनवार
उनमें चाँदी के मृदु-तार।
जातरूप के बने किवार
सजे कुसुम से हीरक-द्वार ॥

दिल्ली के उज्ज्वल हर द्वार,
चमचम कंचन कलश अपार।
जलमय कुश-पल्लव सहकार
शोभित उन पर कुसुमित हार ॥

लटक रहे थे तोरण-जाल,
बजती शहनाई हर काल।
उछल रहे थे सुन स्वर ताल,
पथ पर छोटे-छोटे बाल ॥

बजते झाँझ नगारे ढोल,
गायक गाते थे उर खोल,
जय जय नगर रहा था बोल,
विजय-ध्वजा उड़ती अनमोल।

घोड़े हाथी सजे सवार,
सेना सजी, सजा दरबार
गरज गरज तोपें अविराम
छूट रहीं थीं बारंबार ॥

झण्डा हिलता अभय समान
मादक स्वर से स्वागत-गान
छाया था जय का अभिमान
भू था अमल गगन अम्लान।

दिल्ली का विस्तृत उद्यान
विहँस उठा ले सुरभि-निधान
था मंगल का स्वर्ण-विहान
पर अतिशय चिन्तित था मान॥

सुनकर शोलापुर की हार
एक विशेष लगा दरबार।
आये दरबारी सरदार
पहनेगा अकबर जय-हार॥

बैठा भूप सहित अभिमान
पर न अभी तक आया मान।
दुख से कहता था सुल्तान—
'कहाँ रह गया मान महान्'॥

तब तक चिन्तित आया मान
किया सभी ने उठ सम्मान।
थोड़ा सा उठकर सुल्तान
बोला 'आओ बैठो मान'॥

की अपनी छाती उत्तान
अब आई मुख पर मुस्कान।
किन्तु मान मुख पर दे ध्यान
भय से बोल उठा सुल्तान॥

"ऐ मेरे उर के अभिमान,
शोलापुर के विजयी मान।
है किस ओर बता दे ध्यान,
क्यों तेरा मुख-मण्डल म्लान॥

तेरे स्वागत में मधु-गान
जगह जगह पर तने वितान।
क्या दुख है बतला दे मान
तुझ पर यह दिल्ली कुर्बान" ॥

अकबर के सुन प्रश्न उदार
देख सभासद-जन के प्यार।
लगी ढरकने बारम्बार
आँखों से आँसू की धार ॥

दुख के उठे विषम उद्गार
सोच-सोच अपना अपकार।
लगा सिसकने मान अपार
थर-थर काँप उठा दरबार ॥

घोर अवज्ञा का कर ध्यान
बोला सिसक-सिसक कर मान।
"तेरे जीते-जी सुल्तान
ऐसा हो मेरा अपमान" ॥

सबने कहा अरे, अपमान!
मानसिंह तेरा अपमान!
"हाँ, हाँ मेरा ही अपमान,
सरदारो! मेरा अपमान" ॥

कहकर रोने लगा अपार,
विकल हो रहा था दरबार।
रोते ही बोला—"सरकार,
असहनीय मेरा अपकार ॥

ले सिंहासन का सन्देश,
सिर पर तेरा ले आदेश।
गया निकट मेवाड़-नरेश।
यही व्यथा है यह ही क्लेश ॥

आँखों में लेकर अंगार
क्षण-क्षण राणा की फटकार।
"तुझको खुले नरक के द्वार
तुझको जीवन भर धिक्कार ॥

तेरे दर्शन से संताप
तुझको छूने से ही पाप।
हिन्दू-जनता का परिताप
तू है अम्बर-कुल पर शाप ॥

स्वामी है अकबर सुल्तान
तेरे साथी मुगल पठान।
राणा से तेरा सम्मान
कभी न हो सकता है मान ॥

करता भोजन से इनकार
अथवा कुत्ते सम स्वीकार।
इसका आज न तनिक विचार
तुझको लानत सौ सौ बार ॥

म्लेच्छ-वंश का तू सरदार
तू अपने कुल का अंगार।
इस पर यदि उठती तलवार
राणा लड़ने को तैयार ॥

उसका छोटा सा सरदार
मुझे द्वार से दे दुत्कार।
कितना है मेरा अपकार
यही बात खलती हर बार ॥

शेष कहा जो उसने आज
कहने में लगती है लाज।
उसे समझ ले तू सिरताज
और बन्धु यह यवन-समाज" ॥

वर्णन के थे शब्द ज्वलन्त
बढ़े अचानक ताप अनन्त ।
सब ने कहा यकायक हन्त
अब मेवाड़ देश का अन्त ॥

बैठे थे जो यवन अमीर
लगा हृदय में उनके तीर
अकबर का हिल गया शरीर
सिंहासन हो गया अधीर ॥

कहाँ पहनता वह जयमाल
उर में लगी आग विकराल ।
आँखें कर लोहे सम लाल
भभक उठा अकबर तत्काल ॥

कहा—"न रह सकता चुपचाप,
सह सकता न मान-संताप ।
बढ़ा हृदय का मेरे ताप
आन रहे, या रहे प्रताप ॥

वीरो अरि को दो ललकार,
उठो, उठा लो भीम-कटार ।
घुसा-घुसा अपनी तलवार,
कर दो सीने के उस पार ॥

महा महा भीषण-रण ठान,
ऐ भारत के मुगल पठान ।
रख लो सिंहासन की शान,
कर दो अब मेवाड़ मसान ॥

है न तिरस्कृत केवल मान
मुगल-राज का भी अपमान ।
रख लो मेरी अपनी आन
कर लो हृदय-रक्त का पान ॥

ले लो सेना एक विशाल
मान, उठा लो कर से ढाल।
शक्तसिंह ले लो करवाल
बदला लेने का है काल॥

सरदारो, अब करो न देर
हाथों में ले लो शमशेर।
वीरो, लो अरिदल को घेर
कर दो काट-काटकर ढेर" ॥

क्षण भर में निकले हथियार
बिजली सी चमकी तलवार।
घोड़े, हाथी सजे अपार
रण का भीषणतम हुङ्कार ॥

ले सेना होकर उत्तान
ले करवाल-कटार-कमान।
चला चुकाने बदला मान
हल्दीघाटी के मैदान॥

मानसिंह का प्रस्थान
सत्य-अहिंसा का बलिदान।
कितना हृदय-विदारक ध्यान
शत-शत पीड़ा का उत्थान॥

सप्तम सर्ग

एक सौ चौरासी पंक्ति

अभिमानी मान-अवज्ञा से,
थर-थर होने संसार लगा।
पर्वत की उन्नत चोटी पर,
राणा का भी दरबार लगा॥

अम्बर पर एक वितान तना,
बलिहार अछूती आनों पर।
मखमली बिछौने बिछे अमल,
चिकनी-चिकनी चट्टानों पर॥

शुचि सजी शिला पर राणा भी
बैठा अहि सा फुङ्कार लिये।
फर-फर झण्डा था फहर रहा
भावी रण का हुङ्कार लिये॥

भाला-बरछी-तलवार लिये
आये खरधार कटार लिये।
धीरे-धीरे झुक-झुक बैठे
सरदार सभी हथियार लिये॥

तरकस में कस-कस तीर भरे
कन्धों पर कठिन कमान लिये।
सरदार भील भी बैठ गये
झुक-झुक रण के अरमान लिये॥

जब एक-एक जन को समझा
जननी-पद पर मिटने वाला।
गम्भीर भाव से बोल उठा
वह वीर उठा अपना भाला ॥

तरु-तरु के मृदु संगीत रुके
मारुत ने गति को मंद किया।
सो गये सभी सोने वाले
खग-गण ने कलरव बन्द किया।

राणा की आज मदद करने
चढ़ चला इन्दु नभ-ज़ीने पर,
झिलमिल तारक-सेना भी आ
डट गई गगन के सीने पर ॥

गिरि पर थी बिछी रजत-चादर,
गह्वर के भीतर तम-विलास।
कुछ-कुछ करता था तिमिर दूर,
जुग-जुग जुगनू का लघु-प्रकाश ॥

गिरि अरावली के तरु के थे
पत्ते-पत्ते निष्कम्प अचल।
वन-वेलि-लता-लतिकाएँ भी
सहसा कुछ सुनने को निश्चल ॥

था मौन गगन, नीरव रजनी,
नीरव सरिता, नीरव तरंग।
केवल राणा का सदुपदेश,
करता निशीथिनी-नींद भंग ॥

वह बोल रहा था गरज-गरज,
रह-रह कर में असि चमक रही।
रव-वलित बरसते बादल में,
मानों बिजली थी दमक रही ॥

"सरदारो, मान-अवज्ञा से
माँ का गौरव बढ़ गया आज।
दबते न किसी से राजपूत
अब समझेगा वैरी-समाज॥

वह मान महा अभिमानी है
बदला लेगा ले बल अपार।
कटि कस लो अब मेरे वीरो
मेरी भी उठती है कटार॥

भूलो इन महलों के विलास
गिरि-गुहा बना लो निज-निवास।
अवसर न हाथ से जाने दो
रण-चण्डी करती अट्टहास॥

लोहा लेने को तुला मान
तैयार रहो अब साभिमान।
वीरो, बतला दो उसे अभी
क्षत्रियपन की है बची आन॥

साहस दिखलाकर दीक्षा दो
अरि को लड़ने की शिक्षा दो।
जननी को जीवन-भिक्षा दो
ले लो असि वीर-परीक्षा दो॥

रख लो अपनी मुख-लाली को
मेवाड़-देश-हरियाली को।
दे दो नर-मुण्ड कपाली को
शिर काट-काटकर काली को॥

विश्वास मुझे निज वाणी का
है राजपूत-कुल-प्राणी का।
वह हट सकता है वीर नहीं
यदि दूध पिया क्षत्राणी का॥

नश्वर तन को डट जाने दो
अवयव-अवयव छट जाने दो।
परवाह नहीं, कटते हो तो
अपने को भी कट जाने दो॥

अब उड़ जाओ तुम पाँखों में।
तुम एक रहो अब लाखों में
वीरो, हलचल सी मचा-मचा
तलवार घुसा दो आँखों में॥

यदि सके शत्रु को मार नहीं
तुम क्षत्रिय वीर-कुमार नहीं।
मेवाड़-सिंह मरदानों का
कुछ कर सकती तलवार नहीं॥

मेवाड़-देश, मेवाड़-देश
समझो यह है मेवाड़-देश।
जब तक दुख में मेवाड़ देश
वीरो, तब तक के लिए क्लेश॥

सन्देश यही, उपदेश यही
कहता है अपना देश यही।
वीरो दिखला दो आत्म-त्याग
राणा का है आदेश यही॥

अब से मुझको भी हास शपथ,
रमणी का वह मधुमास शपथ।
रति-केलि शपथ, भुजपाश शपथ,
महलों के भोग-विलास शपथ॥

सोने चाँदी के पात्र शपथ,
हीरा-मणियों के हार शपथ।
माणिक-मोती से कलित-ललित
अब से तन के शृंगार शपथ॥

गायक के मधुमय गान शपथ
कवि की कविता की तान शपथ।
रस-रंग शपथ, मधुपान शपथ
अब से मुख पर मुसकान शपथ॥

मोती-झालर से सजी हुई
वह सुकुमारी सी सेज शपथ।
यह निरपराध जग थहर रहा
जिससे वह राजस-तेज शपथ॥

पद पर जग-वैभव लोट रहा
वह राज-भोग सुख-साज शपथ।
जगमग जगमग मणि-रत्न-जटित
अब से मुझको यह ताज शपथ॥

जब तक स्वतन्त्र यह देश नहीं
है कट सकता नख केश नहीं।
मरने कटने का क्लेश नहीं
कम हो सकता आवेश नहीं॥

परवाह नहीं, परवाह नहीं
मैं हूँ फकीर अब शाह नहीं।
मुझको दुनिया की चाह नहीं
सह सकता जन की आह नहीं।

अरि सागर, तो कुम्भज समझो
वैरी तरु, तो दिग्गज समझो
आँखों में जो पट जाती वह
मुझको तूफ़ानी रज समझो॥

यह तो जननी की ममता है
जननी भी सिर पर हाथ न दे।
मुझको इसकी परवाह नहीं
चाहे कोई भी साथ न दे॥

विष-बीज न मैं बोने दूँगा
अरि को न कभी सोने दूँगा।
पर दूध कलंकित माता का
मैं कभी नहीं होने दूँगा" ॥

प्रण थिरक उठा पक्षी-स्वर में
सूरज-मयंक-तारक-कर में।
प्रतिध्वनि ने उसको दुहराया
निज काय छिपाकर अम्बर में ॥

पहले राणा के अन्तर में ॥
गिरि अरावली के गह्वर में।
फिर गूँज उठा वसुधा भर में
वैरी समाज के घर घर में ॥

बिजली-सी गिरी जवानों में
हलचल-सी मची प्रधानों में।
वह भीष्म प्रतिज्ञा घहर पड़ी
तत्क्षण अकबर के कानों में ॥

प्रण सुनते ही रण-मतवाले
सब उछल पड़े ले-ले भाले।
उन्नत मस्तक कर बोल उठे
"अरि पड़े न हम सबके पाले।"

हम राजपूत, हम राजपूत,
मेवाड़-सिंह, हम राजपूत।
तेरी पावन आज्ञा सिर पर,
क्या कर सकते यमराज-दूत ॥

लेना न चाहते अब विराम
देता रण हमको स्वर्ग-धाम।
छिड़ जाने दे अब महायुद्ध
करते तुझको शत-शत प्रणाम ॥

अब देर न कर सज जाने दे
रण-भेरी भी बज जाने दे।
अरि-मस्तक पर चढ़ जाने दे
हमको आगे बढ़ जाने दे॥

लड़कर अरि-दल को दूर दें हम,
दे दे आज्ञा ऋण भर दें हम,
अब महायज्ञ में आहुति बन
अपने को स्वाहा कर दें हम॥

मुरदे अरि तो पहले से थे
छिप गये क़ब्र में ज़िन्दे भी,
'अब महायज्ञ में आहुति बन',
रटने लग गये परिन्दे भी॥

पौ फटी, गगन दीपावलियाँ
बुझ गईं मलय के झोंकों से।
निशि पश्चिम विधु के साथ चली
डरकर भालों की नोकों से॥

दिनकर सिर काट दनुज-दल का
खूनी तलवार लिये निकला।
कहता इस तरह कटक काटो
कर में अंगार लिये निकला॥

रँग गया रक्त से प्राची-पट
शोणित का सागर लहर उठा।
पीने के लिये मुगल-शोणित
भाला राणा का हहर उठा॥

अष्टम सर्ग

एक सौ चालीस पंक्ति

रण-यात्रा

गणपति के पावन पाँव पूज,
वाणी-पद को कर नमस्कार ।
उस चण्डी को, उस दुर्गा को,
काली-पद को कर नमस्कार ॥

उस कालकूट पीनेवाले के
नयन याद कर लाल-लाल ।
डग-डग ब्रह्माण्ड हिला देता
जिसके ताण्डव का ताल-ताल ॥

ले महाशक्ति से शक्ति भीख
व्रत रख वनदेवी रानी का ।
निर्भय होकर लिखता हूँ मैं
ले आशीर्वाद भवानी का ॥

मुझको न किसी का भय-बन्धन
क्या कर सकता संसार अभी ।
मेरी रक्षा करने को जब
राणा की है तलवार अभी ।

मनभर लोहे का कवच पहन,
कर एकलिङ्ग को नमस्कार ।
चल पड़ा वीर, चल पड़ी साथ
जो कुछ सेना थी लघु-अपार ॥

घन-घन-घन-घन-घन गरज उठे
रण-वाद्य सूरमा के आगे ।
जागे पुश्तैनी साहस-बल
वीरत्व वीर-उर के जागे ॥

सैनिक राणा के रण जागे ।
राणा प्रताप के प्रण जागे ।
जौहर के पावन क्षण जागे
मेवाड़-देश के व्रण जागे ॥

जागे शिशोदिया के सपूत
बापा के वीर-बबर जागे,
बरछे जागे, भाले जागे,
खन-खन तलवार तबर जागे ॥

कुम्भल गढ़ से चलकर राणा
हल्दीघाटी पर ठहर गया ।
गिरि अरावली की चोटी पर
केसरिया-झंडा फहर गया ॥

प्रणवीर अभी आया ही था
अरि साथ खेलने को होली ।
तब तक पर्वत-पथ से उतरा
पुंजा ले भीलों की टोली ॥

भैरव-रव से जिनके आये ।
रण के बजते बाजे आये ।
इंगित पर मर मिटनेवाले
वे राजे-महराजे आये ॥

सुनकर जय हर-हर सैनिक-रव
वह अचल अचानक जाग उठा ।
राणा को उर से लगा लिया
चिर निद्रित जग अनुराग उठा ॥

नभ की नीली चादर ओढ़े
युग-युग से गिरिवर सोता था ।
तरु तरु के कोमल पत्तों पर
मारुत का नर्तन होता था ॥

चलते चलते . जब थक जाता
दिनकर करता आराम वहीं ।
अपनी तारक-माला पहने
हिमकर करता विश्राम वहीं ॥

गिरि-गुहा-कन्दरा के भीतर
अज्ञान-सदृश था अन्धकार ।
बाहर पर्वत का खण्ड-खण्ड
था ज्ञान-सदृश उज्ज्वल अपार ॥

वह भी कहता था अम्बर से
मेरी छाती पर रण होगा ।
जननी-सेवक-उर-शोणित से
पावन मेरा कण-कण होगा ॥

पाषाण-हृदय भी पिघल-पिघल
आँसू बनकर गिरता झर-झर ।
गिरिवर भविष्य पर रोता था
जग कहता था उसको निर्झर ॥

वह लिखता था चट्टानों पर
राणा के गुण अभिमान सजल ।
वह सुना रहा था मृदु-स्वर से
सैनिक को रण के गान सजल ॥

वह चला चपल निर्झर झर-झर
वसुधा-उर-ज्वाला खोने को;
या थके महाराणा-पद को
पर्वत से उतरा धोने को ॥

लघु-लघु लहरों में ताप-विकल
दिनकर दिन भर मुख धोता था।
निर्मल निर्झर जल के अन्दर
हिमकर रजनी भर सोता था॥

राणा पर्वत-छवि देख रहा
था, उन्नत कर अपना भाला।
थे विटप खड़े पहनाने को
लेकर मृदु कुसुमों की माला॥

लाली के साथ निखरती थी
पल्लव-पल्लव की हरियाली।
डाली-डाली पर बोल रही-
थी कुहू-कुहू कोयल काली

निर्झर की लहरें चूम-चूम
फूलों के वन में घूम घूम।
मलयानिल बहता मन्द मन्द
बौरे आमों में झूम-झूम॥

जब तुहिन-भार से चलता था
धीरे धीरे मारुत-कुमार।
तब कुसुम-कुमारी देख-देख
उस पर हो जाती थी निसार॥

उड़-उड़ गुलाब पर बैठ-बैठ
करते थे मधु का पान मधुप।
गुन-गुन-गुन गुन-गुन कर करते
राणा के यश का गान मधुप॥

लोनी लतिका पर झूल-झूल,
बिखराते कुसुम-पराग प्यार।
हँस-हँसकर कलियाँ झाँक रही
थीं खोल पँखुरियों के किवार॥

तरु-तरु पर बैठे मृदु-स्वर से
गाते थे स्वागत-गान शकुनि ।
कहते यह ही बलि-वेदी है
इस पर कर दो बलिदान शकुनि ॥

केसर से निर्झर-कूल लाल
फूले पलास के फूल लाल ।
तुम भी बैरी-सिर काट-काट
कर दो शोणित से धूल लाल ॥

तुम तरजो-तरजो वीर, रखो
अपना गौरव अभिमान यहीं ।
तुम गरजो-गरजो सिंह, करो
रण-चण्डी का आह्वान यहीं ॥

खग-रव सुनते ही रोम-रोम
राणा-तन के फरफरा उठे ।
जरजरा उठे सैनिक अरि पर
पत्ते-पत्ते थरथरा उठे ॥

तरु के पत्तों से, तिनकों से
बन गया यहीं पर राजमहल ।
उस राजकुटी के वैभव से
अरि का सिंहासन गया दहल ॥

बस गये अचल पर राजपूत,
अपनी-अपनी रख ढाल-प्रबन्ध
जय बोल उठे राणा की, रख
बरछे-भाले-करवाल प्रबल ॥

राणा प्रताप की जय बोले
अपने नरेश की जय बोले ।
भारत-माता की जय बोले
मेवाड़-देश की जय बोले ॥

जय एकलिङ्ग, जय एकलिङ्ग,
जय प्रलयंकर शंकर हर-हर ।
जय हर-हर गिरि का बोल उठा
कंकड़-कंकड़, पत्थर-पत्थर ॥

देने लगा महाराणा
दिन-रात समर की शिक्षा ।
फूँक-फूँक मेरी वैरी को
करने लगा प्रतीक्षा ॥

नवम सर्ग

एक सौ छत्तीस पंक्ति

धीरे से दिनकर द्वार खोल
प्राची से निकला लाल-लाल।
गह्वर के भीतर छिपी निशा
बिछ गया अचल पर किरण-जाल ॥

सन-सन-सन-सन-सन चला पवन
मुरझा-मुरझाकर गिरे फूल।
बढ़ चला तपन, चढ़ चला ताप
घू-घू करती चल पड़ी धूल ॥

तन झुलस रही थीं लू-लपटें
तरु-तरु पद में लिपटी छाया
तर-तर चल रहा पसीना था
छन-छन जलती जग की काया ॥

पड़ गया कहीं दोपहरी में
वह तृषित पथिक हुन गया वहीं।
गिर गया कहीं कन भूतल पर
वह भूभुर में भुन गया वहीं ॥

विधु के वियोग से विकल मूक
नभ जला रहा था अपना उर।
जलती थी धरती तवा सदृश,
पथ की रज भी थी बनी भउर ॥

उस दोपहरी में चुपके से
खोते-खोते में चंचु खोल।
आतप के भय से बैठे थे
खग मौन-तपस्वी सम अबोल॥

हर ओर नाचती दुपहरिया
मृग इधर-उधर थे डौक रहे।
जन भिगो-भिगो पट, ओढ़-ओढ़
जल पी-पी पंखे हौंक रहे॥

रवि आग उगलता था भू पर
अदहन सरिता-सागर अपार।
कर से चिनगारी फेंक-फेंक
जग फूँक रहा था बार-बार

गिरि के रोड़े अंगार बने
भुनते थे शेर कछारों में।
इससे भी ज्वाला अधिक रही
उन वीर-व्रती-तलवारों में॥

आतप की ज्वाला से छिपकर
बैठे थे संगर-वीर भील।
पर्वत पर तरु की छाया में
थे बहस कर रहे रणधीर भील॥

उन्नत मस्तक कर कहते थे
ले-लेकर कुन्त कमान तीर।
माँ की रक्षा के लिए आज
अर्पण है यह नश्वर शरीर॥

हम अपनी इन करवालों को
शोणित का पान करा देंगे।
हम काट-काटकर वैरी सिर
संगर-भू पर बिखरा देंगे॥

कितने देते पैतरा वीर
थे बने तुरग कितने समीर।
कितने भीषण-रव से मतंग
जग को करते आते अधीर॥

देखी न सुनी न, किसी ने भी
टिड्डी-दल सी इतनी सेना।
कल-कल करती, आगे बढ़ती
आती अरि की जितनी सेना॥

अजमेर नगर से चला तुरत
खमनौर-निकट बस गया मान।
बज उठा दमामा दम-दम-दम
गड़ गया अचल पर रण-निशान॥

भीषण-रव से रण-डंका के
थर-थर अवनी-तल थहर उठा।
गिरि-गुहा-कन्दरा का कण-कण
घन-घोर-नाद से घहर उठा॥

बोले चिल्लाकर कोल-भील
तलवार उठा लो बढ़ आई।
मेरे शूरो, तैयार रहो
मुगलों की सेना चढ़ आई॥

चमका-चमका असि बिजली सम
रँग दो शोणित से पर्वत-कण।
जिससे स्वतन्त्र यह रहे देश
दिखला दो वही भयानक-रण॥

हम सब पर अधिक भरोसा है
मेवाड़-देश के पानी का।
वीरो, निज को कुर्बान करो
है यही समय कुर्बानी का॥

अब से सैनिक राणा का
दरबार लगा रहता था।
दरबान महीधर बनकर
दिन-रात जगा रहता था॥

दशम सर्ग

एक सौ छप्पन पंक्ति

खिलती शिरीष की कलियाँ
संगीत मधुर झुन-रुन-झुन ।
तरु-मिस वन झूम रहा था
खग-कुल-स्वर-लहरी सुन-सुन ॥

माँ झूला झूल रही थी
नीमों के मृदु झूलों पर ।
बलिदान-गान गाते थे
मधुकर बैठे फूलों पर ॥

थी नव-दल की हरियाली
वट-छाया मोद-भरी थी,
नव अरुण-अरुण गोदों से
पीपल की गोद भरी थी ॥

कमनीय कुसुम खिल-खिलकर
टहनी पर झूल रहे थे ।
खग बैठे थे मन मारे
सेमल-तरु फूल रहे थे ॥

इस तरह अनेक विटप थे
थी सुमन-सुरभि की माया ।
सुकुमार-प्रकृति ने जिनकी
थी रची मनोहर-काया ॥

बादल ने उनको सींचा
दिनकर-कर ने गरमी दी ।
धीरे-धीरे सहलाकर,
मारुत ने जीवन-श्री दी ॥

मीठे मीठे फल खाते
शाखामृग शाखा पर थे ।
शक देख-देख होता था
वे बानर थे वा नर थे ॥

भैंसे भू खोद रहे थे
आ, नहा-नहा नालों से ।
थे केलि भील भी करते
भालों से, करवालों से ॥

नव हरी-हरी दूर्वों पर
बैठा था भीलों का दल ।
निर्मल समीप ही निर्झर
बहता था, कल-कल छल-छल ॥

ले सहचर मान शिविर से
निर्झर के तीरे-तीरे ।
अनिमेष देखता आया
वन की छवि धीरे-धीरे ॥

उसने भीलों को देखा
उसको देखा भीलों ने ।
तन में बिजली-सी दौड़ी
वन लगा भयावह होने ॥

शोणित-मय कर देने को
वन-वीथी बलिदानों से ।
भीलों ने भाले ताने
असि निकल पड़ी म्यानों से ॥

जय-जय केसरिया बाबा
जय एकलिङ्ग की बोले ।
जय महादेव की ध्वनि से
पर्वत के कण-कण डोले ॥

ललकार मान को घेरा
हथकड़ी पिन्हा देने को ।
तरकस से तीर निकाले
अरि से लोहा लेने को ॥

अरि को भी धोखा देना
शूरों की रीति नहीं है।
छल से उनको वश करना
यह मेरी नीति नहीं है॥

अब से भी झुक-झुककर तुम
सत्कार समेत विदा दो।
कर क्षमा-याचना इनको
गल-हार समेत विदा दो॥"

आदेश मान भीलों ने
सादर की मान-बिदाई।
ले चला घटा पीड़ा की
जो थी उर-नभ पर छाई॥

भीलों से बातें करता
सेना का व्यूह बनाकर।
राणा भी चला शिविर को
अपना गौरव दिखलाकर॥

था मान सोचता, दुख देता
भीलों का अत्याचार मुझे।
अब कल तक चमकानी होगी
वह बिजली-सी तलवार मुझे॥

है त्रपा-भार से दबा रहा
राणा का मृदु-व्यवहार मुझे।
कल मेरी मयद बजेगी ही
रण-विजय मिले या हार मुझे॥

एकादश सर्ग

दो सौ. अस्सी पंक्ति

जग में जाग्रति पैदा कर दूँ,
वह मन्त्र नहीं, वह तन्त्र नहीं।
कैसे वांछित कविता कर दूँ,
मेरी यह कलम स्वतन्त्र नहीं॥

अपने उर की इच्छा भर दूँ,
'ऐसा है कोई यन्त्र नहीं।
हलचल सी मच जाये पर
यह लिखता हूँ रण षड्यन्त्र नहीं॥

ब्राह्मण है तो आँसू भर ले,
क्षत्रिय है नत मस्तक कर ले।
है वैश्य शूद्र तो बार-बार,
अपनी सेवा पर शक कर ले॥

दुख, देह-पुलक कम्पन होता,
हा, विषय गहन यह नभ-सा है।
यह हृदय-विदारक वही समर
जिसका लिखना दुर्लभ-सा है॥

फिर भी पीड़ा से भरी कलम,
लिखती प्राचीन कहानी है।
लिखती हल्दीघाटी रण की,
वह अजर-अमर कुर्बानी है॥

सावन का हरित प्रभात रहा
अम्बर पर थी घनघोर घटा।
फहरा कर पंख थिरकते थे
मन हरती थी वन-मोर-छटा॥

पड़ रही फुही झीसी; झिन-झिन
पर्वत की हरी वनाली पर।
'पी कहाँ' पपीहा बोल रहा
तरु-तरु की डाली-डाली पर॥

वारिद के उर में चमक-दमक
तड़ तड़ बिजली थी तड़क रही।
रह-रह कर जल था बरस रहा
रणधीर-भुजा थी फड़क रही॥

था मेघ बरसता झिमिर-झिमिर
तटिनी की भरी जवानी थी।
बढ़ चली तरंगों की असि ले
चण्डी-सी वह मस्तानी थी॥

वह घटा चाहती थी जल से
सरिता-सागर-निर्झर भरना।
यह घटा चाहती शोणित से
पर्वत का कण-कण तर करना॥

धरती की प्यास बुझाने को
वह घहर रही थी घन-सेना।
लोहू पीने के लिए खड़ी
यह हहर रही थी जन-सेना॥

नभ पर चम-चम चपला चमकी,
चम-चम चमकी तलवार इधर।
भैरव अमन्द घन-नाद उधर,
दोनों दल की ललकार इधर॥

लड़-लड़कर अखिल महीतल को
शोणित से भर देनेवाली,
तलवार वीर की तड़प उठी
अरि-कण्ठ कतर देनेवाली ॥

राणा का ओज भरा आनन
सूरज-समान चमचमा उठा ।
बन महाकाल का महाकाल
भीषण-भाला दमदमा उठा ॥

भेरी प्रताप की बजी तुरत
बज चले दमामे धमर-धमर ।
धम-धम रण के बाजे बाजे,
बज चले नगारे घमर-घमर ॥

जय रुद्र बोलते रुद्र-सदृश
खेमों से निकले राजपूत ।
झट झंडे के नीचे आकर
जय प्रलयंकर बोले सपूत ॥

अपने पैने हथियार लिये
पैनी पैनी तलवार लिये ।
आये खर-कुन्त-कटार लिये
जननी सेवा का भार लिये ॥

कुछ घोड़े पर कुछ हाथी पर,
कुछ योधा पैदल ही आये ।
कुछ ले बरछे कुछ ले भाले,
कुछ शर से तरकस भर लाये ॥

रण-यात्रा करते ही बोले
राणा की जय, राणा की जय ।
मेवाड़-सिपाही बोल उठे
शत बार महाराणा की जय ॥

हल्दीघाटी के रण की जय,
राणा प्रताप के प्रण की जय।
जय जय भारतमाता की जय,
मेवाड़-देश-कण-कण की जय॥

हर एकलिङ्ग, हर एकलिङ्ग
बोला हर-हर अम्बर अनन्त।
हिल गया अचल, भर गया तुरंत
हर हर निनाद से दिगदिगन्त॥

घनघोर घटा के बीच चमक
तड़ तड़ नभ पर तड़िता तड़की।
झन-झन असि की झनकार इधर
कायर-दल की छाती धड़की॥

अब देर न थी वैरी-वन में
दावानल के सम छूट पड़े।
इस तरह वीर झपटे उनपर
मानो हरि मृग पर टूट पड़े॥

मरने कटने की बान रही
पुश्तैनी इससे आह न की।
प्राणों की रंचक चाह न की
तोपों की भी परवाह न की॥

रण-मत्त लगे बढ़ने आगे
सिर काट-काट करवालों से।
संगर की मही लगी पटने
क्षण-क्षण अरि-कण्ठ-कपालों से॥

हाथी सवार हाथी पर थे,
बाजी सवार बाजी पर थे।
पर उनके शोणित-मय मस्तक
अवनी पर मृत-राजी पर थे॥

कर की असि ने आगे बढ़कर
संगर-मतंग-सिर काट दिया ।
बाजी वक्षःस्थल गोभ-गोभ
बरछी ने भूतल पाट दिया ॥

गज गिरा, मरा, पिलवान गिरा,
हय कटकर गिरा, निशान गिरा ।
कोई लड़ता उत्तान गिरा,
कोई लड़कर बलवान गिरा ॥

झटके से शूल गिरा भू पर
बोला भट मेरा शूल कहाँ ।
शोणित का नाला बह निकला,
अवनी-अम्बर पर धूल कहाँ ॥

आँखों में भाला भोंक दिया
लिपटे अन्धे जन अन्धों से ।
सिर कटकर भू पर लोट गये,
लड़ गये कबन्ध कबन्धों से ॥

अरि-किन्तु घुसा झट उसे दबा ।
अपने सीने के पार किया ।
इस तरह निकट वैरी-उर को
कर-कर कटार से फार दिया ॥

कोई खरतर करवाल उठा
सेना पर बरसा आग गया ।
गिर गया शीश कटकर भू पर
घोड़ा धड़ लेकर भाग गया ॥

कोई करता था रक्त वमन,
छिद गया किसी मानव का तन ।
कट गया किसी का एक बाहु,
कोई था सायक-विद्ध नयन ॥

गिर पड़ा पीन गज, फटी धरा,
खर रक्त-वेग से कटी धरा।
चोटी-दाढ़ी से पटी धरा,
रण करने को भी घटी धरा॥

तो भी रख प्राण हथेली पर
वैरी-दल पर चढ़ते ही थे।
मरते कटते मिटते भी थे,
पर राजपूत बढ़ते ही थे॥

राणा प्रताप का ताप तचा,
अरि-दल में हाहाकर मचा।
भेड़ों की तरह भगे कहते
अल्लाह हमारी जान बचा॥

अपनी नंगी तलवारों से
वे आग रहे हैं उगल कहाँ।
वे कहाँ शेर की तरह लड़ें,
हम दीन सिपाही मुगल कहाँ॥

भयभीत परस्पर कहते थे
साहस के साथ भगो वीरो।
पीछे न फिरो, न मुड़ो, न कभी
अकबर के हाथ लगो वीरो।

यह कहते मुगल भगे जाते,
भीलों के तीर लगे जाते।
उठते जाते, गिरते जाते,
बल खाते, रक्त पगे जाते॥

आगे थी अगम बनास नदी,
वर्षा से उसकी प्रखर धार।
थी बुला रही उनको शत-शत
लहरों के कर से बार-बार॥

पहिले सरिता को देख डरे,
फिर कूद-कूद उस पार भगे
कितने बह-बह इस पार लगे,
कितने बहकर उस पार लगे ॥

मँझधार तैरते थे कितने,
कितने जल पी-पी ऊब मरे।
लहरों के कोड़े खा-खाकर
कितने पानी में डूब मरे ॥

राणा-दल की ललकार देख,
अपनी सेना की हार देख।
सातंक चकित रह गया मान,
राणा प्रताप के वार देख ॥

व्याकुल होकर वह बोल उठा
"लौटो लौटो न भगो भागो।
मेवाड़ उड़ा दो तोप लगा
ठहरो ठहरो फिर से जागो ॥

देखो आगे बढ़ता हूँ मैं,
वैरी-दल पर चढ़ता हूँ मैं,
ले लो करवाल बढ़ो आगे
अब विजय-मन्त्र पढ़ता हूँ मैं" ॥

भगती सेना को रोक तुरत
लगवा दी भैरव-काय तोप।
उस राजपूत-कुल-घातक ने
हा, महाप्रलय-सा दिया रोप ॥

फिर लगी बरसने आग सतत
उन भीम भयंकर तोपों से।
जल-जलकर राख लगे होने
योद्धा उन मुगल-प्रकोपों से ॥

भर रक्त-तलैया चली उधर,
सेना-उर में भर शोक चला।
जननी-पद शोणित से धो-धो
हर राजपूत हर-लोक चला॥

क्षणभर के लिए विजय दे दी
अकबर के दारुण दूतों को।
माता ने अंचल बिछा दिया
सोने के लिए सपूतों को॥

विकराल गरजती तोपों से
रुई-सी क्षण-क्षण धुनी गई।
उस महायज्ञ में आहुति-सी
राणा की सेना हुनी गई॥

बच गये शेष जो राजपूत
संगर से बदल-बदलकर रुख।
निरुपाय दीन कातर होकर
वे लगे देखने राणा-मुख॥

राणा दल का यह प्रलय देख,
भीषण भाला दमदमा उठा।
जल उठा वीर का रोम-रोम,
लोहित आनन तमतमा उठा॥

वह क्रोध वह्नि से जल भुनकर
काली-कटाक्ष-सा ले कृपाण।
घायल नाहर-सा गरज उठा
क्षण क्षण बिखेरते प्रखर बाण॥

बोला "आगे बढ़ चलो शेर,
मत क्षण भर भी अब करो देर।
क्या देख रहे हो मेरा मुख
तोपों के मुँह दो अभी फेर"॥

बढ़ चलने का सन्देश मिला,
मर मिटने का उपदेश मिला।
"दो फेर तोप-मुख" राणा से
उन सिंहों को आदेश मिला॥

गिरते जाते, बढ़ते जाते,
मरते जाते, चढ़ते जाते।
मिटते जाते, कटते जाते,
गिरते-मरते मिटते जाते॥

बन गये वीर मतवाले थे
आगे वे बढ़ते चले गये।
राणा प्रताप की जय करते
तोपों तक चढ़ते चले गये॥

उन आग बरसती तोपों के
मुँह फेर अचानक टूट पड़े।
वैरी-सेना पर तड़प-तड़प
मानों शत-शत पवि छूट पड़े॥

फिर महासमर छिड़ गया तुरत
लोहू-लोहित हथियारों से।
फिर होने लगे प्रहार वार
बरछे-भाले-तलवारों से॥

शोणित से लथपथ ढालों से,
कर के कुन्तल, करवालों से।
खर-छुरी-कटारी फालों से,
भू भरी भयानक भालों से॥

गिरि की उन्नत चोटी से
पाषाण भील बरसाते।
अरि-दल के प्राण-पखेरू
तन-पिंजर से उड़ जाते॥

कोदण्ड चण्ड-रव करते
वैरी निहारते चोटी ।
तब तक चोटीवालों ने
बिखरा दी चोटी-चोटी ॥

अब इसी समर में चेतक
मारुत बनकर आयेगा ।
राणा भी अपनी असि का,
अब जौहर दिखलायेगा ॥

द्वादश सर्ग

तीन सौ बारह पंक्ति

चित्रकार श्री टी० के० मित्र के सौजन्य से]　　हल्दीघाटी का महासमर

निर्बल बकरों से बाघ लड़े,
भिड़ गये सिंह मृग-छौनों से।
घोड़े गिर पड़े गिरे हाथी,
पैदल बिछ गये बिछौनों से॥

हाथी से हाथी जूझ पड़े,
भिड़ गये सवार सवारों से।
घोड़ों पर घोड़े टूट पड़े,
तलवार लड़ी तलवारों से॥

हय-रुण्ड गिरे, गज-मुण्ड गिरे,
कट-कट अवनी पर शुण्ड गिरे।
लड़ते-लड़ते अरि झुण्ड गिरे,
भू पर हय विकल वितुण्ड गिरे॥

क्षण महाप्रलय की बिजली-सी
तलवार हाथ की तड़प-तड़प
हय-गज-रथ-पैदल भगा भगा
लेती थी बैरी वीर हड़प॥

क्षण पेट फट गया घोड़े का,
हो गया पतन कर-कोड़े का।
भू पर सातंक सवार गिरा,
क्षण पता न था हय-जोड़े का॥

चिग्घाड़ भगा भय से हाथी,
लेकर अंकुश पिलवान गिरा।
झटका लग गया, फटी झालर,
हौदा गिर गया, निशान गिरा ॥

कोई नत-मुख बेजान गिरा,
करवट कोई उत्तान गिरा।
रण-बीच अमित भीषणता से
लड़ते-लड़ते बलवान गिरा ॥

होती थी भीषण मार-काट
अतिशय रण से छाया था भय
था हार-जीत का पता नहीं,
क्षण इधर विजय क्षण उधर विजय।

कोई व्याकुल भर आह रहा,
कोई था विकल कराह रहा,
लोहू से लथपथ लोथों पर
कोई चिल्ला अल्लाह रहा ॥

धड़ कहीं पड़ा, सिर कहीं पड़ा,
कुछ भी उनकी पहचान नहीं।
शोणित का ऐसा वेग बढ़ा
मुरदे बह गये निशान नहीं ॥

मेवाड़-केसरी देख रहा
केवल रण का न तमाशा था।
वह दौड़-दौड़ करता था रण
वह मान-रक्त का प्यासा था ॥

चढ़कर चेतक पर घूम-घूम
करता सेना-रखवाली था।
ले महा मृत्यु को साथ-साथ
मानो प्रत्यक्ष कपाली था ॥

रण-बीच चौकड़ी भर-भरकर
चेतक बन गया निराला था।
राणा प्रताप के घोड़े से
पड़ गया हवा को पाला था॥

गिरता न कभी चेतक-तन पर,
राणा प्रताप का कोड़ा था।
वह दौड़ रहा अरि-मस्तक पर,
या आसमान पर घोड़ा था॥

जो तनिक हवा से बाग हिली
लेकर सवार उड़ जाता था।
राणा की पुतली फिरी नहीं,
तब तक चेतक मुड़ जाता था॥

कौशल दिखलाया चालों में,
उड़ गया भयानक भालों में,
निर्भीक गया वह ढालों में,
सरपट दौड़ा करवालों में॥

है यहीं रहा, अब यहाँ नहीं,
वह वहीं रहा है वहाँ नहीं
थी जगह न कोई जहाँ नहीं,
किस अरि-मस्तक पर कहाँ नहीं॥

बढ़ते नद-सा वह लहर गया,
वह गया गया फिर ठहर गया।
विकराल बज्र-मय बादल-सा
अरि की सेना पर घहर गया॥

भाला गिर गया, गिरा निषंग,
हय-टापों से खन गया अंग।
वैरी-समाज रह गया दंग
घोड़े का ऐसा देख रंग॥

चढ़ चेतक पर तलवार उठा
रखता था भूतल-पानी को ।
राणा प्रताप सिर काट-काट
करता था सफल जवानी को ॥

कलकल बहती थी रण-गंगा
अरि-दल को डूब नहाने को ।
तलवार वीर की नाव बनी
चटपट उस पार लगाने को ॥

वैरी-दल को ललकार गिरी,
वह नागिन-सी फुफकार गिरी,
था शोर मौत से बचो, बचो,
तलवार गिरी, तलवार गिरी ॥

पैदल से हय-दल गज-दल में
छप छप करती वह विकल गई ।
क्षण कहाँ गई कुछ पता न फिर
देखो चमचम वह निकल गई ॥

क्षण इधर गई, क्षण उधर गई,
क्षण चढ़ी बाढ़-सी उतर गई ।
था प्रलय, चमकती जिधर गई,
क्षण शोर हो गया किधर गई ॥

क्या अजब विषैली नागिन थी
जिसके डसने में लहर नहीं ।
उतरी तन से मिट गये वीर
फैला शरीर में ज़हर नहीं ॥

थी छुरी कहीं, तलवार कहीं,
वह बरछी-असि खरधार कहीं ।
वह आग कहीं अंगार कहीं,
बिजली थी कहीं कटार कहीं ॥

लहराती थी सिर काट-काट,
बल खाती थी भू पाट-पाट।
बिखराती अवयव बाट-बाट
तनती थी लोहू चाट-चाट॥

सेना-नायक राणा के भी
रण देख-देखकर चाह भरे।
मेवाड़-सिपाही लड़ते थे
दूने-तिगुने उत्साह भरे॥

क्षण मार दिया कर कोड़े से
रण किया उतर कर घोड़े से।
राणा रण-कौशल दिखा दिखा
चढ़ गया उतर कर घोड़े से॥

क्षण भीषण हलचल मचा-मचा
राणा-कर की तलवार बढ़ी।
था शोर रक्त पीने को यह
रण-चण्डी जीभ पसार बढ़ी॥

वह हाथी-दल पर टूट पड़ा,
मानो उस पर पवि छूट पड़ा।
कट गई वेग से भू, ऐसा
शोणित का नाला फूट पड़ा॥

जो साहस कर बढ़ता उसको
केवल कटाक्ष से टोक दिया।
जो वीर बना नभ-बीच फेंक,
बरछे पर उसको रोक दिया॥

क्षण उछल गया अरि घोड़े पर,
क्षण लड़ा सो गया घोड़े पर।
वैरी-दल से लड़ते-लड़ते
क्षण खड़ा हो गया घोड़े पर॥

क्षण भर में गिरते रुण्डों से
मदमस्त गजों के झुण्डों से,
घोड़ों से विकल वितुण्डों से,
पट गई भूमि नर-मुण्डों से ॥

ऐसा रण राणा करता था
पर उसको था संतोष नहीं।
क्षण-क्षण आगे बढ़ता था वह
पर कम होता था रोष नहीं ॥

कहता था लड़ता मान कहाँ
मैं कर लूँ रक्त-स्नान कहाँ।
जिस पर तय विजय हमारी है
वह मुगलों का अभिमान कहाँ ॥

भाला कहता था मान कहाँ,
घोड़ा कहता था मान कहाँ ?
राणा की लोहित आँखों से
रव निकल रहा था मान कहाँ ॥

लड़ता अकबर सुल्तान कहाँ,
वह कुल-कलंक है मान कहाँ ?
राणा कहता था बार-बार
मैं करूँ शत्रु-बलिदान कहाँ ?

तब तक प्रताप ने देख लिया
लड़ रहा मान था हाथी पर।
अकबर का चंचल साभिमान
उड़ता निशान था हाथी पर ॥

वह विजय-मन्त्र था पढ़ा रहा,
अपने दल को था बढ़ा रहा।
वह भीषण समर-भवानी को
पग-पग पर बलि था चढ़ा रहा ॥

फिर रक्त देह का उबल उठा
जल उठा क्रोध की ज्वाला से।
घोड़ा से कहा बढ़ो आगे,
बढ़ चलो कहा निज भाला से॥

हय-नस नस में बिजली दौड़ी,
राणा का घोड़ा लहर उठा।
शत-शत बिजली की आग लिये
वह प्रलय-मेघ-सा घहर उठा॥

क्षय अमिट रोग, वह राजरोग,
ज्वर सन्निपात लकवा था वह।
था शोर बचो घोड़ा-रण से
कहता हय कौन, हवा था वह॥

तनकर भाला भी बोल उठा
राणा मुझको विश्राम न दे।
बैरी का मुझसे हृदय गोभ
तू मुझे तनिक आराम न दे॥

खाकर अरि-मस्तक जीने दे,
बैरी-उर-माला सीने दे।
मुझको शोणित की प्यास लगी
बढ़ने दे, शोणित पीने दे॥

मुरदों का ढेर लगा दूँ मैं,
अरि-सिंहासन थहरा दूँ मैं।
राणा मुझको आज्ञा दे दे
शोणित सागर लहरा दूँ मैं॥

रंचक राणा ने देर न की,
घोड़ा बढ़ आया हाथी पर।
बैरी-दल का सिर काट-काट
राणा चढ़ आया हाथी पर॥

वह महा प्रतापी घोड़ा उड़
जंगी हाथी को हचक उठा।
भीषण विप्लव का दृश्य देख,
भय से अकबर-दल दबक उठा ॥

क्षण भर छल बल कर लड़ा अड़ा,
दो पैरों पर हो गया खड़ा।
फिर अगले दोनों पैरों को
हाथी-मस्तक पर दिया गड़ा ॥

यह देख मान ने भाले से
करने की की क्षण चाह समर।
इस तरह थाम कर झटक दिया
हाथी की भी झुक गई कमर ॥

राणा के भीषण झटके से
हाथी का मस्तक फूट गया।
अम्बर कलंक उस कायर का
भाला भी दबकर टूट गया ॥

राणा वैरी से बोल उठा—
"देखा न समर भाला से कर।
लड़ना तुझको है अगर अभी
तो फिर लड़ ले भाला लेकर" ॥

"हाँ, हाँ, लड़ना है" कहकर जब
वैरी ने उठा लिया भाला।
क्षण भौंह चढ़ाकर देख दिया,
काँपे जो हाथ गिरा भाला ॥

राणा ने हँसकर कहा "मान,
अब बस कर दे हो गया युद्ध।
वैरी पर वार न करने से
मेरा भाला हो रहा क्रुद्ध ॥

अपने शरीर की रक्षा 'कर
भग जा भग जा अब जान बचा"।
यह कहकर भाला उठा लिया
भीषणतम हाहाकर मचा ॥

क्षण देर न की तनकर मारा,
अरि कहने लगा न भाला है।
यह गेहुवन करइत काला है,
या महा काल मतवाला है ॥

यह चली धधकती ज्वाला है,
शत-शत भुजंग की हाला है।
यह निकल रही भाला की भा,
या प्रलय-वह्नि की माला है ॥

छिप गया मान हौदे-तल में
टकरा कर हौदा टूट गया।
भाले की हलकी हवा लगी,
पिलवान गिरा, तन छूट गया ॥

अब बिना महावत के हाथी
चिग्घाड़ भगा राणा भय से।
संयोग रहा, बच गया मान
खूनी भाला, राणा-हय से ॥

सागर-तरंग की तरह इधर
वैरी राणा पर टूट पड़े।
तलवार गिरी शत एक साथ,
शत बरछे उन पर छूट पड़े ॥

राणा के चारों ओर मुगल
होकर करने आघात लगे।
खा खाकर अरि तलवार चोट
क्षण-क्षण होने भू-पात लगे ॥

दानव-समाज में अरुण पड़ा,
जल-जन्तु-बीच हो वरुण पड़ा।
इस तरह भभकता राणा था
मानो सर्पों में गरुड़ पड़ा॥

हय रुण्ड कतर गज-मुण्ड पाछ,
अरि-व्यूह-गले पर फिरती थी
तलवार वीर की तड़प-तड़प,
क्षण-क्षण बिजली-सी गिरती थी॥

करवाल उठाकर राणा ने
वैरी का मस्तक काट लिया।
ताण्डव करते लड़ते-लड़ते
भाले ने लोहू चाट लिया॥

राणा-कर ने सिर काट-काट
दे दिये कपाल कपाली को।
शोणित की मदिरा पिला-पिला
कर दिया तुष्ट रण-काली को॥

पर दिनभर लड़ने से तन से
चल रहा पसीना था तर-तर
अविरल शोणित की धारा थी
राणा-क्षत से बहती झर-झर॥

घोड़ा भी उसका शिथिल बना,
था उसको चैन न घावों से।
वह अधिक-अधिक लड़ता यद्यपि
दुर्लभ था चलना पावों से॥

तब तक झाला ने देख लिया
राणा प्रताप है संकट में॥
बोला न बाल बाँका होगा
जब तक हैं प्राण बचे घट में॥

गिरि की चोटी पर चढ़कर
किरणें निहारतीं लाशें,
जिनमें कुछ तो मुरदे थे,
कुछ की चलती थी साँसें ॥

वे देख-देख कर उनको
मुरझाती जाती पल-पल ।
होता था स्वर्णिम नभ पर
पक्षी-क्रन्दन का कल-कल

मुख छिपा लिया सूरज ने
जब रोक न सका रुलाई ।
सावन की अन्धी रजनी
वारिद-मिस रोती आई ॥

त्रयोदश सर्ग

एक सौ छिहत्तर पंक्ति

जो कुछ बचे सिपाही शेष,
हट जाने का दे आदेश।
अपने भी हट गया नरेश,
वह मेवाड़-गगन-राकेश॥

बनकर महाकाल का काल
जूझ पड़ा अरि से तत्काल।
उसके हाथों में विकराल
मरते दम तक थी करवाल॥

उसपर तन-मन-धन बलिहार
झाला धन्य, धन्य परिवार।
राणा ने कह कह शत-बार
कुल को दिया अमर अधिकार॥

हाय, ग्वालियर का सिरताज,
सेनप रामसिंह अधिराज,
उसका जगमग जगमग ताज
शोणित-रज-लुण्ठित है आज॥

राजे - महराजे - सरदार
जो मिट गये लिये तलवार,
उनके तर्पण में अविकार
आँखों से आँसू की धार॥

बढ़ता जाता विकल अपार
घोड़े पर हो व्यथित सवार,
सोच रहा था बारंबार
कैसे हो माँ का उद्धार ॥

मैंने किया मुगल-बलिदान,
लोहू से लोहित मैदान।
बचकर निकल गया पर मान,
रा हो न सका अरमान ॥

कैसे बचे देश-सम्मान,
कैसे बचा रहे अभिमान।
कैसे हो भू का उत्थान,
मेरे एकलिङ्ग भगवान ॥

स्वतन्त्रता का भण्डा तान
कब गरजेगा राजस्थान ?
उधर उड़ रहा था वह वाजि,
स्वामी-रक्षा का कर ध्यान ॥

उसको नद - नाले - चट्टान
सकते रोक न वन-वीरान।
राणा को लेकर अविराम
उसको बढ़ने का था ध्यान ॥

पड़ी अचानक नदी अपार,
घोड़ा कैसे उतरे पार।
राणा ने सोचा इस पार,
तब तक चेतक था उस पार ॥

शक्तसिंह भी ले तलवार
करने आया था संहार।
पर उमड़ा राणा को देख
भाई-भाई का मधु प्यार ॥

चेतक के पीछे दो काल
पड़े हुए थे ले असि ढाल।
उसने पथ में उनको मार
की अपनी पावन करवाल॥

आगे बढ़कर भुजा पसार
बोला आँखों से जल ढार।
रुक जा, रुक जा, ऐ तलवार,
नीला - घोड़ारा असवार॥'

पीछे से सुन तार पुकार,
फिरकर देखा एक सवार।
हय से उतर पड़ा तत्काल
लेकर हाथों में तलवार॥

राणा उसको वैरी जान
काल बन गया कुन्तल तान।
बोला "कर लें शोणित पान,
आ, तुझको भी दें बलिदान॥"

पर देखा झर-झर अविकार
बहती है आँसू की धार।
गर्दन में लटकी तलवार,
घोड़े पर है शक्त सवार॥

उतर वहीं घोड़े को छोड़
चला शक्त कम्पित कर जोड़।
पैरों पर गिर पड़ा विनीत
बोला धीरज बन्धन तोड़॥

"करुणा कर तू करुणागार,
दे मेरे अपराध बिसार।
या मेरा दे गला उतार
तेरे कर में है तलवार"॥

यह कह-कहकर बारंबार
सिसकी भरने लगा अपार।
राणा भी भूला संसार,
उमड़ा उर में बन्धु दुलार ॥

उसे उठाकर लेकर गोद
गले लगाया सजल-सामोद।
मिलता था जो रज में प्रेम
किया उसे सुरभित-समोद ॥

लेकर वन्य-कुसुम की धूल
बही हवा मन्थर अनुकूल।
दोनों के सिर पर अविराम
पेड़ों ने बरसाये फूल ॥

कल-कल छल-छल भर स्वर-तान
कहकर कुल-गौरव-अभिमान,
नाले ने गाया सतरंग
उनके निर्मल-यश का गान ॥

तब तक चेतक कर चीत्कार
गिरा धरा पर देह बिसार।
लगा लोटने बारंबार
बहने लगी रक्त की धार ॥

बरछे-असि-भाले गम्भीर
तन में लगे हुए थे तीर
जर्जर उसका सकल शरीर,
चेतक था व्रण-व्यथित अधीर ॥

करता घावों पर दृग-कोर,
कभी मचाता दुख से शोर
कभी देख राणा की ओर
रो देता, हो प्रेम-विभोर ॥
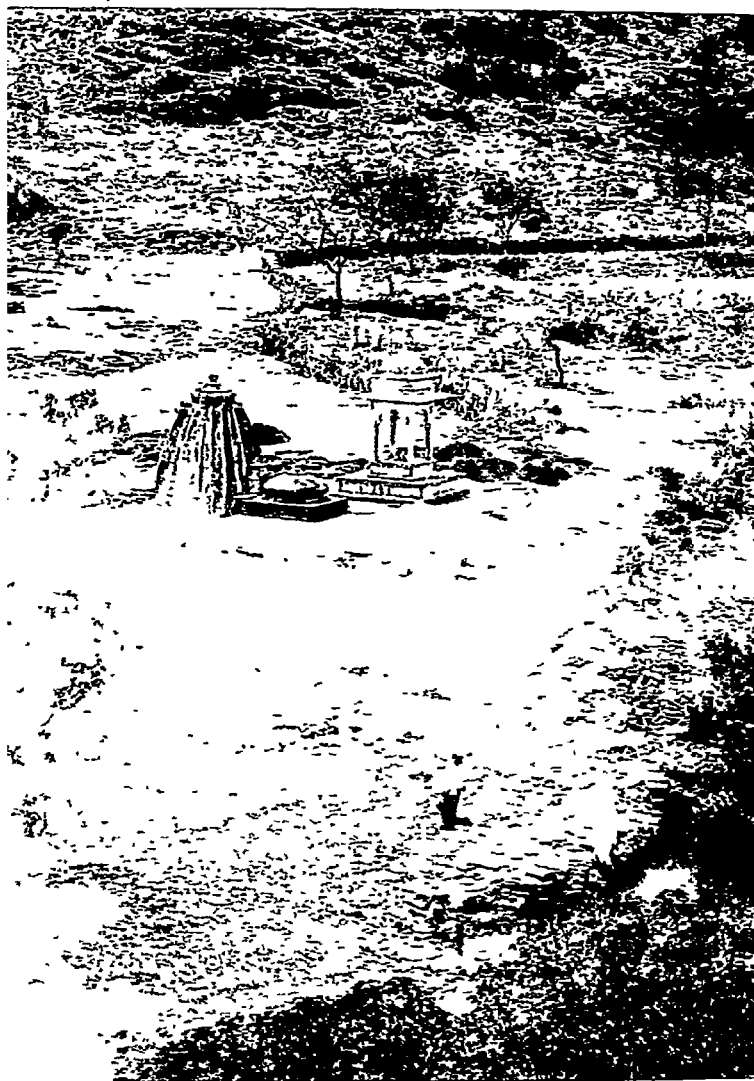
चेतक-चबूतरा

चला गया गज रामप्रसाद,
तू भी चला बना आज़ाद।
हा, मेरा अब राजस्थान
दिन पर दिन होगा बरबाद॥

किस पर देश करे अभिमान,
किस पर छाती हो उत्तान।
भाला मौन, मौन असि म्यान,
इस पर कुछ तो कर तू ध्यान॥

लेकर क्या होगा अब राज,
क्या मेरे जीवन का काज?"
पाठक, तू भी रो दे आज
रोता है भारत-सिरताज॥

तड़प-तड़प अपने नभ-गेह
आँसू बहा रहा था मेह।
देख महाराणा का हाल
बिजली व्याकुल, कम्पित देह॥

घुल-घुल, पिघल-पिघलकर प्राण,
आँसू बन-बनकर पाषाण,
निर्झर-मिस बहता था हाय
हा, पर्वत भी था म्रियमाण॥

क्षण भर ही तक था अज्ञान,
चमक उठा फिर उर में ज्ञान।
दिया शक्त ने अपना वाजि,
चढ़कर आगे बढ़ा महान्॥

जहाँ गड़ा चेतक-कंकाल,
हुई जहाँ की भूमि निहाल।
वहीं देव-मन्दिर के पास,
चबूतरा बन गया विशाल॥

चतुर्दश सर्ग

छानवे पंक्ति

वर्षा-सिंचित विष्ठा को
ठोरों से बिखरा देते,
कर काँव-काँव उसको भी
दो-चार कवर ले लेते ॥

गिरि पर डगरा डगराकर
खोपड़ियाँ फोर रहे थे।
मल-मूत्र-रुधिर चीनी के
शरबत सम घोर रहे थे ॥

भोजन में श्वान लगे थे
मुरदे थे भू पर लेटे।
खा माँस, चाट लेते थे
चटनी सम बहते नेटे ॥

लाशों के फार उदर को
खाते-खाते लड़ जाते।
पोटी पर थूथुन देकर
चर-चर-चर नसें चबाते ॥

तीखे दाँतों से हय के
दाँतों को तोर रहे थे।
लड़-लड़कर, झगड़-झगड़कर,
वे हाड़ चिचोर रहे थे ॥

जम गया जहाँ लोहू था
कुत्ते उस लाल मही पर।
इस तरह टूटते जैसे
मार्जार सजाव दही पर ॥

लड़ते-लड़ते जब असि पर,
गिरते कटकर मर जाते।
तब इतर श्वान उनको भी
पथ-पथ घसीटकर खाते।

पर्वत-शृंगों पर बैठी
थी गीधों की पंचायत।
वह भी उतरी खाने की
सामोद जानकर सायत।

पीते थे, पीव उदर की
बरछी सम चोंच घुसाकर,
सानन्द घोंट जाते थे
मुख में शव-नसें घुलाकर॥

हय-नरम-मांस खा, नर के
कंकाल मधुर चुभलाते।
कागद - समान कर - कर - कर
गज - खाल फारकर खाते॥

इस तरह सड़ी लाशें खाकर
मैदान साफ़ कर दिया तुरत।
युग युग के लिए महीधीर में
गीधों ने भय भर दिया तुरत॥

हल्दीघाटी संगर का तो
हो गया धरा पर आज अन्त।
पर हा, उसका ले व्यथा-भार
वन-वन फिरता मेवाड़-कन्त॥

पंचदश सर्ग

दो सौ छत्तीस पंक्ति

तारक मोती का गजरा
है कौन उसे पहनाता ?
नभ के सुकुमार हृदय पर
वह किसको कौन रिझाता ॥

पूजा के लिए किसी की
क्या नभ-सर कमल खिलाता ?
गुदगुदा सती रजनी को
वह कौन छली इतराता ॥

वह झूम-झूम कर किसको
नव नीरव-गान सुनाता ?
क्या शशि तारक मोती से
नभ नीलम-थाल सजाता ॥

जब से शशि को पहरे पर
दिनकर सो गया जगाकर,
कविता-सी कौन छिपी है
यह ओढ़ रुपहली चादर ॥

क्या चाँदी की डोरी से
वह नाप रहा है दूरी ?
या शेष जगह भू-नभ की
करता ज्योत्स्ना से पूरी ॥

इस उजियाली में जिसमें
हँसता है कलित-कलाधर ।
है कौन खोजता किसको
जुगनू के दीप जलाकर ॥

लहरों के मृदु अधरों का
विधु झुक-झुक करता चुम्बन ।
घुल कोई के प्राणों में
वह बना रहा जग निधुवन ॥

पर हाँ, जब तक हाथों में
मेरी तलवार बनी है,
सीने में घुस जाने को
भाले की तीव्र अनी है ॥

जब तक नस में शोणित है
श्वासों का ताना-बाना,
तब तक अरि-दीप बुझाना
है बन-बनकर परवाना ॥

घासों की रूखी रोटी,
जब तक सोते का पानी।
तब तक जननी-हित होगी
क़ुर्बानी पर क़ुर्बानी ॥

राणा ने विधु तारों को
अपना प्रण-गान सुनाया।
उसके उस गान वचन को
गिरि-कण-कण ने दुहराया ॥

इतने में अचल-गुहा से
शिशु-क्रन्दन की ध्वनि आई ?
कन्या के क्रन्दन में थी
करुणा की व्यथा समाई ॥

उसमें कारागृह से थी
जननी की अचिर रिहाई।
या उसमें थी राणा से
माँ की चिर छिपी जुदाई ॥

भालों से, तलवारों से,
तीरों की बौछारों से,
जिसका न हृदय चंचल था
वैरी-दल-ललकारों से ॥

दो दिन पर मिलती रोटी
वह भी तृण की घासों की,
कंकड़-पत्थर की शय्या,
परवाह न आवासों की ॥

लाशों पर लाशें देखीं,
घायल कराहते देखे।
अपनी आँखों से अरि को
निज दुर्ग ढाहते देखे ॥

तो भी उस वीर-व्रती का
था अचल हिमालय सा मन।
पर हिम-सा पिघल गया वह
सुनकर कन्या का क्रन्दन ॥

आँसू की पावन गंगा
आँखों से झर-झर निकली।
नयनों के पथ से पीड़ा
सरिता-सी बहकर निकली ॥

भूखे -- प्यासे - कुम्हलाये
शिशु को गोदी में लेकर।
पूछा, "तुम क्यों रोती हो
करुणा को करुणा देकर" ॥

अपनी तुतली भाषा में
वह सिसक-सिसककर बोली,
जलती थी भूख तृषा की
उसके अन्तर में होली।

'हा, सही न जाती मुझसे
अब आज भूख की ज्वाला।
कल से ही प्यास लगी है
हो रहा हृदय मतवाला ॥

माँ ने घावों की लोती
मुझको दी थी खाने को,
छोते का पानी देकल
वह बोली भग जाने को ॥

अम्मा छे दूल यहीं पल
छूखी लोती खाती थी।
जो पहले छुना चुकी हूँ,
वह देछ-गीत गाती थी ॥

छच कहती केवल मैंने
एकाध कवल खाया था।
तब तक बिलाव ले भागा
जो इछी लिए आया था ॥

छुनती हूँ तू लाजा है
मैं प्याली छौनी तेली।
क्या दया न तुझको आती
यह दछा देखकल मेली ॥

लोती थी तो देता था,
खाने को मुझे मिथाई।
अब खाने को लोती तो
आती क्यों तुझे लुलाई ॥

वह कौन छत्रु है जिछने
छेना का नाछ किया है?
तुझको, माँ को, हम छभको,
जिछने बनबाछ दिया है ॥

यक छोती छी पैनी छी
तलवाल मुझे भी दे दे।
मैं उछको माल भगाऊँ
छन मुझको लन कलने दे ॥'

कन्या की बातें सुनकर
रो पड़ी अचानक रानी।
राणा की आँखों से भी
अविरल बहता था पानी।

उस निर्जन में बच्चों ने
माँ-माँ कह-कहकर रोया।
लघु-शिशु-विलाप सुन सुनकर
धीरज ने धीरज खोया॥

वह स्वतन्त्रता कैसी है
वह कैसी है आजादी।
जिसके पद पर बच्चों ने
अपनी मुक्ता बिखरा दी॥

सहने की सीमा होती
सह सका न पीड़ा अन्तर।
हा, सन्धि-पत्र लिखने को
वह बैठ गया आसन पर॥

कह 'सावधान' रानी ने
राणा का थाम लिया कर।
बोली अधीर पति से वह
कागद मसिपात्र छिपाकर॥

"तू भारत का गौरव है,
तू जननी-सेवा-रत है।
सच कोई मुझसे पूछे
तो तू ही तू भारत है॥

तू प्राण सनातन का है
मानवता का जीवन है।
तू सतियों का अंचल है
तू पावनता का घन है॥

यदि तू ही कायर बनकर
वैरी सन्धि करेगा।
तो कौन भला भारत का
बोझा माथे पर लेगा॥

लुट गये लाल गोदी के
तेरे अनुगामी होकर।
कितनी विधवाएँ रोतीं
अपने प्रियतम को खोकर॥

आजादी का लालच दे
झाला का प्रान लिया है।
चेतक-सा वाजि गँवाकर
पूरा अरमान किया है॥

तू सन्धि-पत्र लिखने का
कह कितना है अधिकारी?
जब बन्दी माँ के दृग से
अब तक आँसू है जारी॥

थक गया समर से तो तब,
रक्षा का भार मुझे दे।
मैं चण्डी-सी बन जाऊँ
अपनी तलवार मुझे दे"॥

मधुमय कटु बातें सुनकर
देखा ऊपर अकुलाकर,
कायरता पर हँसता था
तारों के साथ निशाकर॥

झाला सन्मुख मुसकाता
चेतक धिक्कार रहा है।
असि चाह रही कन्या भी
तू आँसू ढार रहा है॥

ज्ञाभवन, काशी के सौजन्य से]　　वनवासी प्रताप

षोडश सर्ग

दो सौ चौंसठ पंक्ति

थी आधी रात अँधेरी
तम की घनता थी छाई।
कमलों की आँखों से भी
कुछ देता था न दिखाई॥

पर्वत पर, घोर विजन में
नीरवता का शासन था।
गिरि अरावली सोया था
सोया तमसावृत वन था॥

धीरे से तरु के पल्लव
गिरते थे भू पर आकर।
नीड़ों में खग सोये थे
सन्ध्या को गान सुनाकर॥

नाहर अपनी माँदों में
मृग वन-लतिका झुरमुट में।
दृग मूँद सुमन सोये थे
पंखुरियों के सम्पुट में॥

गाकर मधु-गीत मनोहर
मधुमाखी मधुछातों पर।
सोई थीं बाल तितलियाँ
मुकुलित नव जलजातों पर॥

तिमिरालिंगन से छाया
थी एकाकार निशा भर।
सोई थी नियति अचल पर
ओढ़े घन-तम की चादर॥

आँखों के अन्दर पुतली
पुतली में तिल की रेखा।
उसने भी उस रजनी में
केवल तारों को देखा॥

वे नभ पर काँप रहे थे,
था शीत-कोप कँगलों में।
सूरज-मयंक सोये थे
अपने-अपने बँगलों में॥

निशि-अँधियाली में निद्रित
मारुत रुक-रुक चलता था।
अम्बर था तुहिन बरसता
पर्वत हिम-सा गलता था॥

हेमन्त-शिशिर का शासन,
लम्बी थी रात विरह-सी।
संयोग-सदृश लघु वासर,
दिनकर की छवि हिमकर-सी॥

निर्धन के फटे पुराने
पट के छिद्रों से आकर,
शर-सदृश हवा लगती थी
पाषाण-हृदय दहला कर॥

लगती चन्दन-सी शीतल
पावक की जलती ज्वाला।
वाड़व भी काँप रहा था
पहने तुषार की माला॥

जग अधर विकल हिलते थे
चलदल के दल से थर-थर।
ओसों के मिस नभ-दृग से
बहते थे आँसू झर-झर॥

यव की कोमल बालों पर,
मटरों की मृदु फलियों पर।
नभ के आँसू बिखरे थे
तीसी की नव कलियों पर॥

घन-हरित चने के पौधे,
जिनमें कुछ लहुरे जेठे,
भिंग गये ओस के जल से
सरसों के पीत मुरेठे॥

वह शीत काल की रजनी
कितनी भयदायक होगी।
पर उसमें भी करता था
तप एक वियोगी योगी॥

वह नीरव निशीथिनी में
जिसमें दुनिया थी सोई।
निर्झर की करुण-कहानी
बैठा सुनता था कोई॥

उस निर्झर के तट पर ही
राणा की दीन-कुटी थी।
वह कोने में बैठा था,
कुछ वंकिम सी भृकुटी थी॥

वह कभी कथा झरने की
सुनता था कान लगाकर।
वह कभी सिहर उठता था,
मारुत के झोंके खाकर॥

नीहार-भार-नत मन्थर
निर्झर से सीकर लेकर,
जब कभी हवा चलती थी
पर्वत को पीड़ा देकर ॥

तब वह कथरी के भीतर
आहें भरता था सोकर।
वह कभी याद जननी की
करता था पागल होकर ॥

वह कहता था वैरी ने
मेरे गढ़ पर गढ़ जीते।
वह कहता रोकर, माँ की
अब सेवा के दिन बीते ॥

यद्यपि जनता के उर में
मेरा ही अनुशासन है,
पर इंच इंच भर भू पर
अरि का चलता शासन है ॥

दो चार दिवस पर रोटी
खाने को आगे आई।
केवल सूरत भर देखी
फिर भगकर जान बचाई ॥

अब वन-वन फिरने के दिन
मेरी रजनी जगने की।
क्षण आँखों के लगते ही
आई नौबत भगने की ॥

मैं बझा रहा हूँ शिशु को
कह-कहकर समर-कहानी।
बुद-बुद कुछ पका रही है
हा, सिसक-सिसककर रानी ॥

आँसू-जल पोंछ रही है
चिर क्रीत पुराने पट से।
पानी पनिहारिन-पलकें
भरतीं अन्तर-पनघट से॥

तब तक चमकी वैरी-असि
मैं भगकर छिपा अनारी।
काँटों के पथ से भागी
हा, वह मेरी सुकुमारी॥

तृण घास-पात का भोजन
रह गया वहीं पकता ही।
मैं झुरमुट के छिद्रों से
रह गया उसे तकता ही॥

चलते-चलते थकने पर
बैठा तरु की छाया में।
क्षण भर ठहरा सुख आकर
मेरी जर्जर-काया में॥

जल-हीन रो पड़ी रानी,
बच्चों को तृषित रुलाकर।
कुश-कंटक की शय्या पर
वह सोई उन्हें सुलाकर॥

तब तक अरि के आने की
आहट कानों में आई।
बच्चों ने आँखें खोलीं
कह-कहकर माई-माई॥

रव के भय से शिशु-मुख को
वल्कल से बाँध भगे हम।
गह्वर में छिपकर रोने
रानी के साथ लगे हम॥

वह दिन न अभी भूला है,
भूला न अभी गह्वर है।
सम्मुख दिखलाई देता
वह आँखों का झर-झर है॥

जब सहन न होता, उठता
लेकर तलवार अकेला।
रानी कहती—न अभी है
संगर करने की वेला॥

तब भी न तनिक रुकता तो
बच्चे रोने लगते हैं।
खाने को दो कह-कहकर
व्याकुल होने लगते हैं॥

मेरे निर्बल हाथों से
तलवार तुरत गिरती है।
इन आँखों की सरिता में
पुतली-मछली तिरती है॥

हा, क्षुधा-तृषा से आकुल
मेरा यह दुर्बल तन है।
इसको कहते जीवन क्या,
यह ही जीवन जीवन है॥

अब जननी के हित मुझको
मेवाड़ छोड़ना होगा।
कुछ दिन तक माँ से नाता
हा, विवश तोड़ना होगा॥

अब दूर विजन में रहकर
राणा कुछ कर सकता है।
जिसकी गोदी में खेला,
उसका ऋण भर सकता है॥

राणा ने मुकुट नवाया
चलने की हुई तयारी।
पत्नी शिशु लेकर आगे
पीछे पति वल्कल-धारी ॥

तत्काल किसी के पद का
खुर-खुर रव दिया सुनाई।
कुछ मिली मनुज की आहट,
फिर जय-जय की ध्वनि आई ॥

राणा की जय राणा की
जय-जय राणा की जय हो।
जय हो प्रताप की जय हो,
राणा की सदा विजय हो ॥

वह ठहर गया रानी से
बोला—"मैं क्या हूँ सोता?
मैं स्वप्न देखता हूँ या
भ्रम से ही व्याकुल होता ॥

तुम भी सुनती या मैं ही
श्रुति-मधुर नाद सुनता हूँ।
जय-जय की मन्थर ध्वनि में
मैं मुक्तिवाद सुनता हूँ" ॥

तब तक भामा ने फेंकी
अपने हाथों की लकुटी।
'मेरे शिशु' कह राणा के
पैरों पर रख दी त्रिकुटी ॥

आँसू से पद को धोकर
धीमे-धीमे वह बोला—
"यह मेरी सेवा" कहकर
थैलों के मुँह को खोला ॥

ऊषा ने राणा के सिर
सोने का ताज सजाया।
उठकर मेवाड़-विजय का
खग-कुल ने गाना गाया॥

कोमल-कोमल पत्तों में
फूलों को हँसते देखा।
खिंच गई वीर के उर में
आशा की पतली रेखा॥

उसको बल मिला हिमालय का,
जननी-सेवा-अनुरक्ति मिली।
वर मिला उसे प्रलयंकर का,
उसको चण्डी की शक्ति मिली॥

सूरज का उसको तेज मिला,
नाहर समान वह तरज उठा।
पर्वत पर झण्डा फहराकर
सावन-घन सा वह गरज उठा॥

तलवार निकाली, चमकाई,
अम्बर में. फेरी घूम-घूम।
फिर रखी म्यान में चम-चम-चम,
खरधार-दुधारी चूम-चूम॥

सप्तदश सर्ग

दो सौ चालीस पंक्ति

फागुन था शीत भगाने को
माधव की उधर तयारी थी।
वैरी निकालने को निकली
राणा की इधर सवारी थी॥

थे उधर लाल वन के पलास,
थी लाल अबीर गुलाल लाल।
थे इधर क्रोध से संगर के
सैनिक के आनन लाल-लाल॥

उस ओर काटने चले खेत
कर में किसान हथियार लिये।
अरि-कण्ठ काटने चले वीर
इस ओर प्रखर तलवार लिये॥

उस ओर आम पर कोयल ने
जादू भरकर वंशी टेरी।
इस ओर बजाई वीर-व्रती
राणा प्रताप ने रण-भेरी॥

सुनकर भेरी का नाद उधर
रण करने को शहबाज चला।
लेकर नंगी तलवार इधर
रणधीरों का सिरताज चला॥

दोनों ने दोनों को देखा,
दोनों की थी उन्नत छाती।
दोनों की निकली एक साथ
तलवार म्यान से बल खाती॥

दोनों पग-पग बढ़ चले वीर
अपनी सेना की राजि लिये।
कोई गज लिये बढ़ा आगे
कोई अपना वर वाजि लिये॥

सुन-सुन मारू के भैरव रव
दोनों दल की मुठभेड़ हुई।
हर-हर-हर कर पिल पड़े वीर,
वैरी की सेना भेंड़ हुई॥

उनकी चोटी में आग लगी,
अरि झुण्ड देखते ही आगे।
जागे पिछले रण के कुन्तल,
उनके उर के साहस जागे॥

प्रलयंकर संगर-वीरों को
जो मुगल मिला वह समय मिला।
वैरी से हल्दीघाटी का
बदला लेने को समय मिला॥

गज के कराल किलकारों से,
हय के हिन-हिन हुङ्कारों से।
बाजों के रव, ललकारों से,
भर गया गगन टंकारों से॥

पन्नग-समूह में गरुड़-सदृश,
तृण में विकराल कृशानु-सदृश।
राणा भी रण में कूद पड़ा
घन अन्धकार में भानु-सदृश॥

राणा-हय की ललकार देख,
राणा की चल-तलवार देख।
देवीर समर भी काँप उठा
अविराम वार पर वार देख॥

क्षण-क्षण प्रताप का गर्जन सुन
सुन-सुन भीषण रव बाजों के,
अरि, कफन काँपते थे थर-थर
घर में भयभीत बजाजों के॥

आगे अरि-मुण्ड चबाता था
राणा हय तीखे दाँतों से।
पीछे मृत-राजि लगाता था
वह मार-मार कर लातों से॥

अवनी पर पैर न रखता था
अम्बर पर ही वह घोड़ा था।
नभ से उतरा अरि भाग चले,
चेतक का असली जोड़ा था॥

अरि-दल की सौ-सौ आँखों में
उस घोड़े को गड़ते देखा।
नभ पर देखा, भू पर देखा,
वैरी-दल में लड़ते देखा॥

वह कभी अचल सा अचल बना,
वह कभी चपलतर तीर बना।
जम गया कभी, वह सिमट गया,
वह दौड़ा, उड़ा, समीर बना॥

नाहर समान जंगी गज पर
वह कूद-कूद चढ़ जाता था।
टापों से अरि को खूँद-खूँद
घोड़ा आगे बढ़ जाता था॥

यदि उसे किसी ने टोक दिया,
वह महाकाल का काल बना।
यदि उसे किसी ने रोक दिया,
वह महाव्याल विकराल बना॥

राणा को लिये अकेला ही
रण में दिखलाई देता था।
ले-लेकर अरि के प्राणों को
चेतक का बदला लेता था॥

राणा उसके ऊपर बैठा
जिस पर सेना दीवानी थी।
कर में हल्दीघाटी वाली
वह ही तलवार पुरानी थी॥

हय-गज-सवार के सिर को थी,
वह तमक-तमककर काट रही।
वह रुण्ड-मुण्ड से भूतल को,
थी चमक-चमककर पाट रही॥

दुश्मन के अत्याचारों से
जो उजड़ी भूमि विचारी थी,
नित उसे सींचती शोणित से
राणा की कठिन दुधारी थी॥

वह बिजली-सी चमकी चम-चम
फिर मुगल-घटा में लीन हुई।
वह छप-छप-छप करती निकली,
फिर चमकी, छिपी, विलीन हुई॥

फुफकार भुजंगिन सी करती
खच-खच सेना के पार गई
अरि-कण्ठों से मिलती-जुलती
इस पार गई, उस पार गई॥

वह पीकर ख़ून उगल देती
मस्ती से रण में घूम-घूम।
अरि-शिर उतारकर खा जाती
वह मतवाली सी झूम झूम ॥

हाथी-हय-तन के शोणित की
अपने तन में मल कर रोली,
वह खेल रही थी संगर में
शहबाज-वाहिनी से होली ॥

वह कभी श्वेत, अरुणाभ कभी,
थी रंग बदलती क्षण-क्षण में।
गाजर-मूली की तरह काट
सिर बिछा दिये रण-प्रांगण में ॥

यह हाल देख वैरी-सेना
देवीर-समर से भाग चली।
राणा प्रताप के वीरों के
उर में हिंसा की आग जली ॥

लेकर तलवार अपाइन तक
अरि-अनीकिनी का पीछा कर।
केसरिया झण्डा गाड़ दिया
राणा ने अपना गढ़ पाकर ॥

फिर नदी-बाढ़ सी चली चमू
रण-मत्त उमड़ती कुम्भलगढ़।
तलवार चमकने लगी तुरत
उस कठिक दुर्ग पर सत्वर चढ़ ॥

गढ़ के दरवाज़े खोल मुगल
थे भग निकले पर फेर लिया,
अब्दुल के अभिमानी-दल को,
राणा प्रताप ने घेर लिया ॥

इस तरह काट सिर बिछा दिये
सैनिक जन ने लेकर कृपान।
यव-मटर काटकर खेतों में,
जिस तरह बिछा देते किसान॥

मेवाड़-देश की तलवारें
अरि-रक्त-स्नान से निखर पड़ीं।
कोई जन भी जीता न बचा
लाशों पर लाशें बिखर पड़ीं॥

जय पाकर फिर कुम्भलगढ़ पर
राणा का झंडा फहर उठा।
वह चपल लगा देने ताड़न,
अरि का सिंहासन थहर उठा॥

फिर बढ़ी आग की तरह प्रबल
राणा प्रताप की जन-सेना।
गढ़ पर गढ़ ले-ले बढ़ती थी
वह आँधी-सी सन-सन सेना॥

वह एक साल ही के भीतर
अपने सब दुर्ग किले लेकर,
रणधीर-वाहिनी गरज उठी
वैरी-उर को चिन्ता देकर॥

मेवाड़ हँसा, फिर राणा ने
जय-ध्वजा किले पर फहराई।
माँ धूल पोंछकर राणा की
सामोद फूल-सी मुसकाई॥

घर-घर नव बन्दनवार बँधे,
बाजे शहनाई के बाजे।
जल भरे कलश दरवाजों पर
आये सब राजे महराजे॥

मंगल के मधुर स-राग गीत
मिल-मिलकर सतियों ने गाये।
गाकर गायक ने विजय-गान
श्रोता जन पर मधु बरसाये॥

कवियों ने अपनी कविता में
राणा के यश का गान किया।
भूपों ने मस्तक नवा-नवा
सिंहासन का सम्मान किया॥

धन दिया गया भिखमङ्गों को
अविराम भोज पर भोज हुआ।
दीनों को नूतन वस्त्र मिले,
वर्षों तक उत्सव रोज हुआ॥

हे विश्ववन्द्य, हे कल्याकर,
तेरी लीला अद्भुत अपार।
मिलती न विजय, यदि राणा का
होता न कहीं तू मददगार॥

तू क्षिति में, पावक में, जल में,
नभ में, मारुत में वर्त्तमान,
तू अजपा में, जग की साँसें
कहतीं सोऽहं तू है महान्॥

इस पुस्तक का अक्षर-अक्षर,
प्रभु, तेरा ही अभिराम-धाम।
हल्दीघाटी का वर्ण-वर्ण,
कह रहा निरन्तर राम-राम॥

पहले सृजन के एक, पीछे
तीन, तू अभिराम है।
तू विष्णु है, तू शम्भु है,
तू विधि, अनन्त प्रणाम है,

जल में अजन्मा, तव करों से
बीज बिखराया गया ।
इससे चराचर सृजन-कर्त्ता
तू सदा गाया गया ॥

तू हार-सूत्र समान सब में
एक सा रहता सदा ।
तू सृष्टि करता, पालता,
संहार करता सर्वदा ॥

स्त्री-पुरुष तन के भाग दो,
फल सकल करुणा-दृष्टि के ।
वे ही बने माता पिता
उत्पत्ति-वाली सृष्टि के ॥

तेरी निशा जो दिवस सोने-
जागने के हैं बने,
वे प्राणियों के प्रलय हैं,
उत्पत्ति-क्रम से हैं बने ॥

तू विश्व-योनि, अयोनि है,
तू विश्व का पालक प्रभो !
तू विश्व-आदि अनादि है,
तू विश्व-संचालक प्रभो !

तू जानता निज को तथा
निज सृष्टि है करता स्वयम् ।
तू शक्त है अतएव अपने
आपको हरता स्वयम् ॥

द्रव, कठिन, इन्द्रिय-ग्राह्य और
अग्राह्य, लघु, गुरु युक्त है ।
अणिमादिमय है कार्य, कारण,
और उनसे मुक्त है ॥

आरम्भ होता तीन स्वर से
तू वही ओंकार है।
फल-कर्म जिनका स्वर्ग-मख है
तू वही अविकार है॥

जो प्रकृति में रत हैं तुझे वे
तत्त्व-वेत्ता कह रहे।
फिर प्रकृतिद्रष्टा भी तुझी को,
ब्रह्म-वेत्ता कह रहे॥

तू पितृगण का भी पिता है,
राम-राम हरे हरे।
दक्षादि का भी सृष्टि-कर्ता
और पर से भी परे॥

तू हव्य, होता, भोज्य, भोक्ता,
तू सनातन है प्रभो!
तू वेद्य, ज्ञाता, ध्येय, ध्याता,
तू पुरातन है प्रभो!

हे राम, हे अभिराम,
तू कृतकृत्य कर अवतार से।
दबती निरन्तर जा रही है
मेदिनी अघ-भार से॥

राणा-सदृश तू शक्ति दे,
जननी-चरण-अनुरक्ति दे।
या देश-सेवा के लिए
झाला-सदृश ही भक्ति दे॥

परिशिष्ट

एक सौ आठ पंक्ति

मेवाड़—सिंहासन

यह एकलिंग का आसन है,
इस पर न किसी का शासन है।
नित सिहक रहा कमलासन है,
यह सिंहासन, सिंहासन है॥

यह सम्मानित अधिराजों से,
अर्चित है, राज-समाजों से।
इसके पद-रज पोंछे जाते
भूपों के सिर के ताजों से॥

इसकी रक्षा के लिए हुई
कुर्बानी पर कुर्बानी है।
राणा! तू इसकी रक्षा कर
यह सिंहासन अभिमानी है॥

खिलजी-तलवारों के नीचे
थरथरा रहा था अवनी-तल।
वह रत्नसिंह था रत्नसिंह,
जिसने कर दिया उसे शीतल॥

मेवाड़ - भूमि - बलिवेदी पर
होते बलि शिशु रनिवासों के।
गोरा - बादल · रण-कौशल से
उज्ज्वल पन्ने इतिहासों के॥

जिसने जौहर को जन्म दिया
वह वीर पद्मिनी रानी है।
राणा ! तू इसकी रक्षा कर,
यह सिंहासन अभिमानी है ॥

मूँजा के सिर के शोणित से
जिसके भाले की प्यास बुझी।
हम्मीर वीर वह था जिसकी
असि वैरी-उर कर पार जुझी ॥

प्रण किया वीरवर चूँडा ने
जननी-पद-सेवा करने का।
कुम्भा ने भी व्रत ठान लिया
रत्नों से अंचल भरने का ॥

यह वीर-प्रसविनी वीर-भूमि,
रजपूती की रजधानी है।
राणा ! तू इसकी रक्षा कर
यह सिंहासन अभिमानी है ॥

जयमल ने जीवन-दान किया,
पत्ता ने अर्पण प्रान किया।
कल्ला ने इसकी रक्षा में
अपना सब कुछ कुर्बान किया ॥

साँगा को अरसी घाव लगे,
मरहम-पट्टी थी आँखों पर।
तो भी उसकी असि बिजली सी
फिर गई छपाछप लाखों पर ॥

अब भी करुणा की करुण-कथा
हम सबको याद ज़बानी है।
राणा ! तू इसकी रक्षा कर,
यह सिंहासन अभिमानी है ॥

क्रीड़ा होती हथियारों से,
होती थी केलि कटारों से।
असि-धार देखने को उँगली
कट जाती थी तलवारों से॥

हल्दी-घाटी का भैरव-पथ
रँग दिया गया था ख़ूनों से।
जननी-पद-अर्चन किया गया
जीवन के विकच प्रसूनों से॥

अब तक उस भीषण घाटी के
कण-कण की चढ़ी जवानी है।
राणा! तू इसकी रक्षा कर,
यह सिंहासन अभिमानी है॥

भीलों में रण-झङ्कार अभी,
लटकी कटि में तलवार अभी।
भोलेपन में ललकार अभी,
आँखों में हैं अंगार अभी॥

गिरिवर के उन्नत-शृंगों पर
तरु के मेवे आहार बने।
इसकी रक्षा के लिए शिखर थे
राणा के दरबार बने॥

जावरमाला के गह्वर में
अब भी तो निर्मल पानी है।
राणा! तू इसकी रक्षा कर,
यह सिंहासन अभिमानी है॥

चूँडावत ने तन भूषित कर
युवती के सिर की माला से।
खलबली मचा दी मुगलों में,
अपने भीषणतम भाला से॥

घोड़े को गज पर चढ़ा दिया,
'मत मारो' मुगल-पुकार हुई।
फिर राजसिंह-चूँडावत से
अवरंगजेब की हार हुई॥

वह चारुमती रानी थी,
जिसकी चेरि बनी मुगलानी है।
राणा! तू इसकी रक्षा कर,
यह सिंहासन अभिमानी है॥

कुछ ही दिन बीते फतहसिंह
मेवाड़-देश का शासक था।
वह राणा तेज उपासक था
तेजस्वी था अरि-नाशक था॥

उसके चरणों को चूम लिया
करलिया समर्चन लाखों ने।
टकटकी लगा उसकी छवि को
देखा कर्जन की आँखों ने॥

सुनता हूँ उस मरदाने की
दिल्ली की अजब कहानी है।
राणा! तू इसकी रक्षा कर,
यह सिंहासन अभिमानी है॥

तुझमें चूँडा सा त्याग भरा,
बापा-कुल का अनुराग भरा।
राणा-प्रताप सा रग-रग में
जननी-सेवा का राग भरा॥

अगणित-उर-शोणित से सिंचित
इस सिंहासन का स्वामी है।
भूपालों का भूपाल अभय
राणा-पथ का तू गामी है॥

दुनिया कुछ कहती है सुन ले,
यह दुनिया तो दीवानी है।
राणा! तू इसकी रक्षा कर,
यह सिंहासन अभिमानी है॥